केरल ज्योति

फरवरी 2026

ISSN 2320-9976
Reference Resource Journal

केरल हिंदी प्रचार सभा

ISO 9001: 2015

प्रो.एस. पद्मकुमारी टीचर का आदर।

प्रो.एस. पद्मकुमारी टीचर : अभिनंदन ग्रंथ गुरुदक्षिणा का लोकार्पण।

सभागार में उपस्थित मान्य सदस्य गण।

केरलज्योति
केरल हिंदी प्रचार सभा
की मुख पत्रिका
(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की
वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक
स्व. के वासुदेवन पिल्लै
पूर्व समीक्षा समिति
प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर
परामर्श मंडल
डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे
प्रबन्ध संपादक
गोपकुमार एस (अध्यक्ष)
मुख्य संपादक
डॉ एम एस विनयचंद्रन
संपादक
डॉ रंजीत रविशैलम
संपादकीय मंडल
अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी
प्रकाशन संयोजिका
अर्चना एस

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 62 दल : 11 अंक: **फरवरी 2026**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

'वंदे मातरम' - शतोत्तर सुवर्ण वर्ष में .....! - **अधिवक्ता (डॉ) बी मधु** 6

राजा रविवर्माचरित महाकाव्य – **प्रो.डी.तंकप्पन नायर** 7

दर्शन माला–अनुवाद:**डॉ नेलसन डी** 9

महागुरु चट्टंबी स्वामिकळ् -
मूल : **डॉ (प्रोफ़) ए एम उण्णिकृष्णन,** अनुवाद : **डॉ प्रिया राणी पी एस** 11

आवाँ : मज़दूर संगठन का यथार्थ चित्रण - **डॉ रंजी कोशी** 12

समकालीन कवि कुमार अंबुज की कविताओं में पर्यावरणीय संवेदना
निषा राफेल 14

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान उत्थान के लिए
संघर्षरत युवावर्ग - **स्टेनी फ्रान्सिस** 18

रणेंद्र के उपन्यासों में पारिस्थितिक संकट: ग्लोबल गाँव के देवता और
गायब होता देश उपन्यासों के संदर्भ में - **सजिता एस एस** 23

स्थायित्व की खोज में नियोजित शिक्षकों का जीवन - **ज्योत्स्ना राठौड़** 27

क्यों है? (कविता)
मूल : **सरस्वति अम्मा,** अनुवाद : **डॉ रंजीत रविशैलम** 30

गोविंद मिश्र के यात्रा साहित्य में केरल - **जोस्मिन जोस** 31

अपुत्रयी : दो उपन्यास ; सत्यजित रे की तीन फिल्में - **डॉ सूर्याबोस** 34

कबीर के ईश्वर चिंतन व ईसाई चिंतन - एक तुलना - **रेवती एस** 38

समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित संघर्षमय क्वीर जीवन - **रेष्मा के आर** 44

मानस कैलास **मूल: मंजु वेल्लायणि**
अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर , डॉ.रंजीत रविशैलम 47

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 49

ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा) 51
मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार

प्रश्नोत्तरी - **डॉ. रंजीत रविशैलम** 54

मुखचित्र : पद्मभूषण पुरस्कार से सम्मानित मलयालम फिल्मी अभिनेता श्री मम्मूट्टी

लेखकों से निवेदनः

• हिंदी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गई उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करने वाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 40/- ***आजीवन चंदा : रु. 4000/-*** ***वार्षिक चंदा : रु. 400/-***

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222/ 9447657301

khpsabha12@gmail.com
www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
फरवरी 2026

संपादकीय

महानायक मम्मूट्टी को पद्मभूषण

हर मलयाली के दिल में विराजमान मलयालम सिनेमा के दिग्गज कलाकार मम्मूट्टी को उनकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिए वर्ष 2026 में पद्मभूषण प्रदान कर राष्ट्र ने समादृत किया। पी आई मुहम्मदकुट्टी उर्फ मम्मूट्टी ने अपनी उत्कृष्ट अदाकारी के बल पर केरल में ही नहीं बल्कि समूचे भारतवर्ष पर अपना अलग-सा स्थान प्राप्त किया। 7 सितंबर 1951 में कोचिन में जन्मे मम्मूट्टी ने अपनी स्कूली शिक्षा के पश्चात सेक्रट हार्ट कॉलेज, महाराजास कॉलेज एवं महात्मा गाँधी यूनिवर्सिटी से उच्च शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद बत्तौर वकील बन गए। 'मंजेरी' के अदालत में प्राक्टीस करते थे। महाराजास कॉलेज की पढ़ाई के दौरान सन् 1971 में 'अनुभवङ्ङल पालिच्चकल' नामक सिनेमा में 'जूनियर आर्टिस्ट' के रूप में काम किया। वही उनकी प्रथम फिल्म थी। फिर 'कालचक्रम', ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता एम टी वासुदेवन नायर का 'देवलोकम' फिल्म में उन्होंने काम किया।

'विल्कानुंड स्वप्नंङ्ङल' नायक के रूप में आपकी पहली फिल्म थी। फिर मेला, अहिंसा, तृष्णा, ओरु वटक्कन वीरगाथा, मतिलुकळ् (दोनों सिनेमा के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार), पटयोट्टम, विधेयन, पोंतनमाटा (राष्ट्रीय पुरस्कार), बाबा साहेब अंबेड़कर (राष्ट्रीय पुरस्कार), भ्रमयुगम् (केरल राज्य पुरस्कार) आदि 400 से अधिक सिनिमाओं का हिस्सा बन गए।

सिनेमा के प्रति आपका लगाव अप्रतिम है। हर तबके के लोगों के चरित्र अभिनीत करने की चाहत उनमें कूट कूटकर भरी है। भारतीय सिनेमा को आपकी देन उत्कृष्ट एवं अनुकरणीय है। वर्ष 1998 में पद्मश्री प्राप्त की, 2010 में डीलिट (मानद), कालिकट विश्वविद्यालय द्वारा, 2022 में केरल राज्य सरकार की ओर से 'केरल प्रभा' आदि उन्हें प्राप्त प्रमुख पुरस्कार हैं। आपकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिए केंद्र सरकार ने 'पद्मभूषण' पुरस्कार से उन्हें नवाज़ा है। तेलुगु, अंग्रेज़ी, तमिष़ आदि भाषाओं में अपना महती सान्निध्य आपने प्रदृष्ट कराया है। आम लोगों की सेवा में आप हमेशा अग्रणी रहे। उनका बेटा दुलखर सलमान भी मलयालम सिनेमा का अंग है। 'चमयङ्ङलिल्लाते' मम्मूट्टी की आत्मकथा है। उसमें अपने जीवन के किस्सों को संजीदगी से सजाया गया है। आपकी उत्कृष्ट सेवाओं के लिए प्रदान किए गए 'पद्मभूषण' अलंकरण पर समूचे केरल ज्योति परिवार की शुभकामनाएँ!

डॉ. रंजीत रविशैलम
(संपादक)

'वंदे मातरम' - शतोत्तर सुवर्ण वर्ष में .....!

अधिवक्ता (डॉ) बी मधु

वंदे मातरम्
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्
शस्यश्यामलाम मातरम्!
शुभ्र ज्योत्सना पुलकित यामिनीम
फुल्लकुसुमित द्रुमतल शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीम्
सुखदाम वरदाम मातरम्
वंदे मातरम्

भारतीय साहित्य के प्रारंभिक उपन्यासकार यशस्वी बंकिमचंद्र चाट्टरजी द्वारा रचित 'आनंद मठ' शीर्षक के बंगाली उपन्यास से संबद्ध गीत है 'वंदे मातरम्'। संस्कृत में मूल गीत की रचना हुई थी (1875)। अठारहवीं शती में बंगाल में घटित संत कलह (विद्रोह) की पृष्ठभूमि में रचित उपन्यास है 'आनंद मठ'। मातृभूमि के लिए आत्माहुति की गई जीवात्माओं की वीर गाथाओं द्वारा उपन्यासकार ने देशप्रेमियों के लिए महत्वपूर्ण संदेश दिखाया है। यह गीत स्वतंत्रता संग्राम में जन-जन का प्रेरणा स्रोत रह था।

बंकिमचंद्र चाट्टरजी के निधन के पश्चात्; कलकत्ते में आयोजित इंडियन नाशनल कॉग्रेस के वार्षिक सम्मेलन में (1896) कवींद्र रवींद्र ने 'वंदेमातरम' कविता का वाचन किया था। उन दिनों भारत के देशीय गीत की चर्चा चल रही थी। कार्यकारिणी समिति के कुछ सदस्यों ने गीत का खुल्लम खुल्लम विरोध किया। कारण यह रहा था कि गीत की कुछ पंक्तियाँ (मदर गोडस/देवता) मूर्ति पूजा के अनुकूल बयान कर देती है। मुहम्मदाली जिन्ना साहिब ने इसके पक्षधरों को साधुवाद भी दिया था। लेकिन रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा रचित 'जन गण मन' (Jana-gana-mana) गीत के संबंध में किसी भी पक्ष की ओर से अस्वीकृति की बड़ी बात नहीं बनी। अतः 'जन गण मन' गीत National Anthem बन गया। लेकिन 'वंदेमातरम' को भी कॉन्स्टिट्युवंट असेंब्ली ने समतुल्यता की मान्यता दी। (It has an equal status with 'jana-gana-mana') ताकि इसे 'जन गण मन' के समान दर्जा प्राप्त हुआ। हाँ, अंतर तो यह रह गया एक तो राष्ट्र गान (National Anthem)बन गया, दूसरा समतुल्य राष्ट्रीय गीत (National Song)।

संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य भारत के 'राष्ट्रीय प्रतीकों' पर प्रत्येक नागरिक को श्रद्धालु होना चाहिए।

गीतकार तथा गीत को शत शत प्रणाम!

अधिवक्ता(डॉ) मधु बी
मंत्री

राजा रविवर्माचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

सातवाँ सर्ग
चित्रकला के अध्ययन का प्रारंभ

1. एक दिन राजमहल के पिछवाड़े जब पहुँचे महाराज तो देखा
उन्होंने खड़िया के टुकड़ों और लकड़ी के कोयलों के डुकड़ों से
खींचे रविवर्मा के चित्रों को ध्यान से जिनमें थे रूप मनुष्य के
गाय घोड़ा बिल्ली आदि जानवरों के और वृक्षलतादि के।
2. भित्तियों में स्थान पाये थे राजमहल के समीप के मन्दिर के
कुछ शिल्पों के रूप एवं लता निकुंजों के पक्षी आदि और
प्रकट की थी उन चित्रों में बालक ने अपनी जन्मसिद्ध प्रतिभा,
अनूठी कल्पनाशक्ति और महाराज ने किया उनका आस्वादन।
3. फिर आज्ञा दी सेवकों को कि रविवर्मा को बुलाओ और
सुनकर उसे दुःखी हुए सेवक और सोचा कि अवश्य दंड मिलेगा
बालक को लेकिन देखा सेवकों ने कि खुशी से गले लगा रहे हैं
बालक को और और कहा उन्होंने कि बेटा बहुत अच्छे हैं तेरे चित्र।
4. यह सुनकर ही आश्वस्त हुए सेवक लोग और तभी से शुरू
होता है चित्रकला का पाठ और रविवर्मा के पहले गुरु थे
मामाजी राजराजवर्मा ही और उनसे प्राप्त हुआ विद्यारंभ
चित्रकला का और शुरू हुआ अध्ययन भी बड़े उत्साह से।
5. उन दिनों चित्रकला का अध्ययन शुरू होता था ज़मीन पर कुछ
रूपों को खींचकर और राजमहल के निकट की नाट्यशाला में
होता था अध्ययन गोबर से लीपकर बने विशाल फर्श पर
गुरु से खिंचे चित्र देखकर शिष्य करते थे प्रारंभ चित्र खींचना।
6. पढ़ने को चित्रकला नाट्यशाला जाते थे अनेक छात्र
फिर भी सिर्फ रविवर्मा रह गये चार-पाँच मास बाद और
फर्श पर पत्ते फूल पेड़ पक्षी आदि का खाका खींचने के बाद
अच्छी तरह खींचने लगे थे बालक रविवर्मा मनुष्य के विविध रूप।
7. तदनन्तर देखकर पेंसिल के रूपों को खींचने लगे प्रतिकृतियाँ
और फिर प्रारंभ किया स्केच बनाना वस्तुओं को देखकर
और रविवर्मा ने पहले ऐसे रूपों को भित्तियों पर खींचा था
और उन्होंने पायी बाद में काफी जानकारी सही नाप की।
8 पहले वे अंकित करते थे पेंसिल से स्केच पुस्तक में
विविध प्रकार के पत्तों फूलों एवं विविध प्रकार के काम

करनेवाले मनुष्यों के रूपों को और फिर वे समर्थ निकले
खींचनेवाली वस्तु के रूप को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने में।

9. चित्रकला के पाठ के साथ पाया उन्होंने भाषा व्याकरण
आदि भी और बाद ही तीन सालों की निरन्तर कला साधना के
प्रारंभ किया गया जलरंग रचनाओं का और राजराजवर्मा
स्वयं ही तैयार करते थे चित्र खींचने के विविध रंग।

10. मामा से सीखकर जलरंगों की निर्माणविधि बाद में उन्होंने खींचे
सफल चित्र प्रकृतिजन्य वर्णों से और उन्होंने जो चित्र खींचे थे बारह
साल की अवस्था में और देखकर उन्हें मामा को हुआ असीम
अभिमान और कहा बेटा, तू होगा विश्व प्रसिद्ध चित्रकार।

11. गुरु का यह आशीर्वाद हुआ साबित सही और रविवर्मा की
प्रारंभकालीन जलरंग रचनायें थीं राजमहल के बंधुजन
सेवक, आंगन, खेत, वृक्ष, फूल, विविध पक्षी, मुख्य घटनायें
पुराण की, सूर्योदय एवं सूर्यास्त के प्रकृति दृश्य आदि।

12. राजमहल की चित्ररचना के साथ रविवर्मा रखते थे रुचि
पुराणों के पारायण और कथकली में भी और सीखने लगे कथकली
गीतों का गायन, अभिनय और अभ्यास वाद्य उपकरणों का उपयोग
आदि भी और ध्यान से देखते थे कथकली नट के मुखालंकार।

13. मामा राजराजवर्मा को भी चकित कर दिया रविवर्मा के खींचे
प्रकृति के रूपों के दृश्यों ने और दीर्घदृष्टि रखनेवाले मामा के मन में
आया विचार कि रविवर्मा को शास्त्रीय एवं समकालीन तकनीकों से
अवगत कराया जाय और इसके लिए विशेषज्ञों को खोजा जाय।

14. उस समय तिरुवितांकूर के शासक थे आयिल्यं तिरुनाल
जिनके साथ निकटतम संबंध था राजराजवर्मा का और वे थे
कला व कलाकारों को प्रोत्साहन देनेवाले कलास्वादक और
उनके आग्रह पर रविवर्मा के साथ महाराज के दर्शन करने गये।

15. अठारह सौ बासठ के मई महीने के एक दिन में साथ
लेकर रविवर्मा को उनके चित्रों सहित राजराजवर्मा पहुँचे
राजमहल और महाराज को पसंद आया रविवर्मा के तीनों
चित्र और बड़े ध्यान से देखा उन्होंने जलरंग के चित्रों को।

16. उन्होंने सलाह दी रविवर्मा को चित्रकला की अधिक पढ़ाई
करने की और वादा भी किया आवश्यक सुविधाएँ प्रदान
करने का और तब से निश्चय किया रविवर्मा ने तिरुवनन्तपुरम में
रहने का और मूडत्तुमठं महल में उनको रहने का किया गया प्रबंध।

17. महल में था एक विशाल पुस्तकालय और थी एक चित्रशाला भी
और रविवर्मा को अवसर भी मिला महाराज से मिलने को
आते स्वदेशी व विदेशी चित्रकारों से परिचित होने का और
प्राप्त हुआ पहला अवसर पढ़ाई को पुस्तकालय के उपयोग से। (क्रमशः)

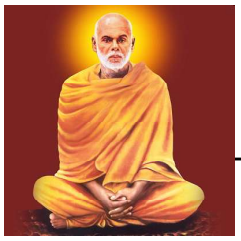

दर्शन माला

डॉ नेलसन डी

अध्यारोप दर्शन

(केरल के महान संत, ऋषि-कवि, समाज सुधारक श्रीनारायणगुरु द्वारा संस्कृत में रची गई वेदांत-संबंधी रचना है 'दर्शनमाला।' दस-दस श्लोकों के दस भाग इसमें समाहित हैं। मुनि नारायण प्रसाद की मलयालम-व्याख्या का हिंदी भाषांतरण डॉ नेलसन डी ने तैयार किया है। - संपादक)

2

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

इस अध्याय में ऐसे विश्वास के आधार पर विचार किया जाता है कि यह संसार कैसे दिखाई देता है कैसा उसका स्वरूप है। हम अनुभव कर रहे हैं कि संसार में किसी का भी स्थाई-भाव नहीं है। सब कहीं निरंतर परिवर्तन दिखाई देता है। हमारे जीवन में भी परिवर्तन होता जा रहा है। सूर्य के उदय के साथ दिन आता है और सूर्यास्त होने के समय रात। इस प्रकार सूर् का उदय और अस्तमय; दिन और रात का आगमन भी निरंतर बदलकर आ रहा है। दिन के आते ही सभी जीव जागकर एक नई ऊर्जस्वलता से कर्म-क्षेत्र में निमग्न होते हैं। रात के आते ही चेतना क्षीण हो जाती है और उँघ आती है। दिन के आने तक उँघते रहते हैं।

अर्थात् बाह्य संसार की रोशनी और अंधेरे के अनुसार जीवों की चेतना में जागरण और बेहोशी होती है। एक ओर नए का आविर्भाव होता है और दूसरी ओर पुराना क्षीण होकर अप्रत्यक्ष होता जा रहा है। एक ओर बढ़ाव होता है और दूसरी ओर घटाव भी। इस प्रकार जीवन में सब जगह बाह्य और आंतरिक में जागरण और निद्रा की दो सतह होती हैं।

हमने देखा कि जिस प्रकार बीज से अंकुर होता है उसी प्रकार एक ही ईश्वर से ही सब कुछ होता है। ईश्वर में उसके लिए एक महाशक्ति मौजूद होती है। इसे सत्य मानना पड़ता है कि उस शक्ति का विश्व में दिखाई देने वाले विरुद्ध भाव प्रकट करने का सामर्थ्य है। अतः उसे अपने में प्रपंच को रखकर ही अंधेरा और रोशनी रूपी दो मुखों की सृष्टि करने की शक्ति है। रोशनी मुख को तैजसी तथा काले मुख को तमसी भी कह सकते हैं। रोशनी और अंधेरे के समान ये विरुद्ध स्वभाव वाले हैं। यही विश्व का स्वभाव है।

ऐसी दशा में हमें मानना पड़ता है कि ईश्वर की तैजसी शक्ति जहाँ प्रभाव के साथ रहती है वहीं तामसी शक्ति प्रभावहीन रहती है तथा जहाँ तामसी शक्ति प्रभाव के साथ रहती है वहीं तैजसी शक्ति प्रभावहीन रहती है। यह लोक-साधारण कार्य है कि ये दोनों शक्तियाँ एक साथ नहीं रहती। लेकिन ईश्वर में दोनों एक साथ ही रहती है। एक की उपस्थिति में दूसरे की अनुपस्थिति होती है अथवा एक के प्रकट होते समय दूसरी नहीं प्रकटती।

ये दोनों शक्तियाँ एक साथ नहीं रहती इसका अर्थ है कि ईश्वर की सृष्टि-रूपी इस विश्व में ये दोनों शक्तियाँ

कभी एक साथ नहीं दिखाई देती। पिछले श्लोक में कहे गए बीज और अंकुर के उदाहरण में भी यह तत्त्व मौजूद है। बीज जब उग आता है तब उसका एक वंश ऊपर रोशनी की तरह बढ़ता है और उसका विकास डण्ठल, पत्ता, फूल, फल आदि के रूप में होता है। दूसरा वंश मिट्टी के भीतर अंधेरे की तरफ जाता है और वहीं शाखोपशाखाओं में अलग-अलग होकर जड़ों के एक गुच्छे की सृष्टि करता है। इन दोनों को बाहर लाने की शक्ति बीज में मौजूद है। जिस तरफ जड़ बढ़ती है डण्ठल उस तरफ नहीं बढ़ सकती। उसी प्रकार डण्ठल जिस तरफ बढ़ती है उस तरफ जड़ भी बढ़ नहीं सकती। लेकिन दोनों के मिलने पर ही वृक्ष होता है। उसी प्रकार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों वंश एक ही सिक्के के दो वंशों की तरह रहते हैं और यही सांसारिक जीवन है। इन सबको प्रभावित करने वाला स्रोत है ईश्वर।

5

मनोमात्रमिदं चित्रमिवाग्रे सर्वमीदृशम्।

प्रापयामास वैचित्र्यं भगवाम् चित्रकारवत्।।

अग्रे - आरंभ में; मनोमात्रम् इदम् - केवल मन में होने वाले इस प्रपंच की; चित्रम् इव - चित्र की तरह; ईदृशं सर्वं वैचित्र्यम् - इस प्रकार यहाँ दिखाई देने वाले सारे वैचित्र्यों को; भगवान् - ईश्वर; चित्रकारवत्- चित्रकार के समान ; प्रापयामास - प्राप्त हुआ।

शुरू में यह प्रपंच केवल मन था। जिस प्रकार चित्रकार चित्र का निर्माण करता है
उसी प्रकार यहाँ दिखाई देने वाले सारे वैचित्र्यों के साथ ईश्वर ने प्रपंच की सृष्टि की।

यह प्रपंच ईश्वर की सृष्टि है तो सृष्टि के पूर्व इसकी दशा क्या थी? किस प्रकार इसकी सृष्टि की गई? यही इस श्लोक का चिंतन-विषय है। दूसरे श्लोक में कहा गया है कि सृष्टि के पूर्व सब वासनामय होकर ईश्वर में ही मौजूद थे। वासना का कोई व्यक्त स्वरूप नहीं है। उस वासना का व्यक्त रूप होते समय वह भावना बन जाती है। अतः सृष्टि के पूर्व प्रपंच ईश्वर की भावना में रहा था। उसे समस्त विवरणों के साथ ईश्वर ने बाहर निकाला और प्रत्यक्ष कर दिया। वहीं यह विश्व है। इसका विवरण कोई नहीं कर सकेगा कि ईश्वर के भीतर के रूप में विश्व कैसे रहा और कैसे उसका प्रत्यक्ष रूप प्रकट हुआ। अतः विवरण करने के बदले में हमको एक परिचित उदाहरण दिखाया जाता है। चित्रकार की चित्र-रचना की प्रवीणता-रूपी उदाहरण।

चित्र-रचना के पूर्व चित्रकार एक साधना में रहेगा। उस समय उसकी भावना में सार्थक एक चित्र का रूप आएगा। चित्र का स्वरूप पूर्ण रूप से भावना में प्रकट होते समय वह निष्क्रिय नहीं रह सकता। अपने भीतर दिखाए गए भावना-चित्र को उसे जल्द ही किसी फलक या कागज़ पर संक्रमित करना चाहिए फिर उसके लिए परिश्रम होता है। अपने अंदर दिखाए गए चित्र का पूर्ण रूप से संक्रमित करके तृप्ति पाए बिना उसका ध्यान दूसरे किसी में नहीं जाएगा। अंत में कुल मिलाकर एक परख करेगा कि अपने भीतर दिखे भाव पूर्ण रूप से खींचे हुए चित्र में प्रतिफलित हुए हैं या नहीं। बनावट में कोई कमी हुई है तो उसका सुधार करेगा और उस प्रकार चित्र पूर्ण करेगा। सब कुछ करने के बाद दूर खड़े होकर वह फिर एक बार उसकी परख करेगा और आत्मविश्वास पाएगा कि अपने भीतर की सारी भावनाएँ उसमें समादृत की हैं।

महागुरु चट्टंबी स्वामिकळ्

अनुवाद : डॉ प्रिया राणी पी एस

मूल : डॉ (प्रोफ़) ए एम उण्णिकृष्णन

(डॉ ए एम उण्णिकृष्णन मलयालम साहित्य के शीर्षस्थ आलोचक एवं भाषाविद हैं। आप केरल विश्वविद्यालय के मलयालम विभाग के दूरस्थ शिक्षा विभाग में प्रोफेसर व डीन के पद से सेव निवृत्त हो माँ भारती की सेवा में संलग्न हैं। अब केरल अध्ययन विभाग में एमिरेट्स-प्रोफसर के पद पर विराजमान हैं।)

1. महासमाधि की शताब्दी की शंख ध्वनि

केरल में चट्टम्पिस्वामीजी जैसे कोई व्यक्ति उनके पहले या बाद में पैदा नहीं हुआ था। वे ऐसा एक महान क्रांतिकारी सामाजिक धार्मिक नेता हैं जिन्होंने अकेले ही अपने स्थान और समय से संबद्ध सभी बाधाओं को मिटा दिया। उन्होंने सामुदायिक सहयोग, संगठन की शक्ति और सत्ता या धन के लाभ के बिना ज्ञान के महान शस्त्र से विश्व को आलोकित कर दिया। ऐसा महान कार्य करके वे इतिहास में अद्वितीय हो गये। इतिहास पुरुष चट्टम्पिस्वामीजी जी सच्चे अर्थ में स्व-निर्मित व्यक्ति थे।

वे विभिन्न रूपों में प्रकट हुए, जैसे तपस्वी लेकिन भगवा नहीं पहना, आचार्य लेकिन कोई आश्रम या संगठन स्थापित नहीं किया और त्यागी हैं, जिन्होंने कोई संपत्ति या दर्जा भी हासिल नहीं किया। इस 'असाधारण मनुष्य' के वैश्विक व्यक्तित्व ये हैं।

चट्टम्पिस्वामीजी के बचपन और यौवन कडवाहट से भरे थे। हालांकि वे उच्च जाति में जन्मे माने जाते है। तो भी सामाजिक स्थिति ने उन्हें गरीबी के समुद्र में धकेल दिया। इसलिए उन्हें न तो शुरूआती और औपचारिक शिक्षा प्राप्त हुई और न ही अपनी भूख मिटाने के लिए पर्याप्त भोजन मिला।

चट्टम्पिस्वामीजी का जीवन काल सत्तर वर्ष का रहा है। इस दौरान जो महान कार्य किए हैं, वे गिनती से परे है। इनमें से सबसे प्रसिद्ध तपस्वी के रूप में उनका योगदान है। लेकिन ज्यादातर लोग अभी तक स्वामीजी के ज्ञान निर्माण के बारे में नहीं समझ पाए हैं जो केरल के दार्शनिक इतिहास में दुर्लभ है। शोधकर्ता, इतिहासकार , वैयाकरण, सामाजिक, भाषावैज्ञानिक, चित्रकार, साहित्य समीक्षा के प्रारंभकर्ता, पाठ समीक्षा के पथदर्शक, समीक्षक व्यवहार विश्लेषण का प्रथम प्रयोक्ता, पर्यावरण निशान और लिंग विज्ञान का प्रारंभकर्ता आदि रूपों में वे जाने जाते हैं।

कवि, अनुवादक, कलानिपुण,भूतदया का वक्ता, मर्मचिकित्सक और पुनरूत्थानवादी जैसे विषयों से जुड़ी जीवनियों से बहुत सारी जानकारी उनकी जीवनी से मिलती है। लेकिन तथ्य यह है कि हम ने अभी तक इनमें से कई बातों की विस्तृत और गहन समझ हासिल नहीं की है। इसके लिए उस ज्ञान से संबधित प्रणालियों के लिए उपयुक्त पद्घतिगत शोध करने की आवश्यकता है। उम्मीद है कि चट्टम्पिस्वामीजी की इस महासमाधि शताब्दी के साथ इसे गति मिलेगी। यह आशय स्वामीजी की इस भविष्यवाणी पर आधारित है कि 'पचास साल बाद लोग इस बूढ़े की हर बात पर अधिक ध्यान देने लगेंगे।'

प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से इतने महान और विशाल योगदान देने के बावजूद भी स्वामीजी ने इनकी जिम्मेदारी या परिणामों के श्रेय का दावा नहीं किया है। क्योंकि सबकुछ उस स्थितप्रज्ञ के कर्म थे। तिरुवनंतपुरम में जन्मे चट्टम्पिस्वामीजी की महासमाधि कोल्लम जिले के पन्मना में हुई, जो भारत की गौरवशाली तपस्वी परंपरा के मुकुट बने और उन्होंने केरल पुनर्जागरण की केंद्रिय भूमिका निभाई।

(क्रमशः)

आवाँ : मज़दूर संगठन का यथार्थ चित्रण

डॉ रंजी कोशी

'आवाँ' मुंबई की पृष्ठभूमि पर रचित पांच सौ चवालीस पृष्ठों का एक बृहत् उपन्यास है। इसमें 28 अध्याय है। 'आवाँ' में उत्तर भारती, मराठी, गुजराती, मारवाड़ी, मद्रासी आदि कई पात्र आते हैं। डॉ. देवकृष्ण मौर्य की राय में - "विभिन्न भाषाओं के पात्रों को एक मंच पर लाकर चित्राजी ने क्रांतिकारी कदम तो उठाया ही है और उपन्यास की महत्ता में भी चार चाँद लगाया है।"[1] इसमें कई मज़दूर संगठनों को हम देख सकते हैं। चित्रा मुद्गल ने 'आवाँ' की प्रस्तावना में कहा है -"ट्रेड यूनियन से मैं बहुत थोड़े समय के लिए जुडी रही।"[2] मज़दूर संगठन वास्तव में मज़दूरों के हित के लिए बनाये थे। 'आवाँ' में मज़दूर संगठन के नेताओं का लक्ष्य मज़दूरों की उन्नति नहीं, अपितु अपने लिए ज़्यादा धन कामना है।

डॉ. गोरक्ष थोरात की राय में पांच-सौ चवालीस पृष्ठों के विशाल कलेवर का "आवाँ उपन्यास मज़दूर राजनीति के अंतर्विरोध, आपसी वैमनस्य, प्रतिद्वन्दविता, अंतर्विरोध और उसमें आपराधिक गिरोहों की ठेकेदारी है।"[3]

'कामगार आघाडी' 'आवाँ' में चित्रित एक प्रसिद्ध मज़दूर संगठन है। इसके सर्वोच्च नेता अन्ना साहब है। कामगार आघाडी मज़दूरों के लिए वेतन भत्ता, बोनस, स्वास्थ्य सुविधा, आवास व्यवस्था, बीमारी आदि की छुट्टियाँ, दुर्घटना के लिए मुआवजा आदि को लेकर प्रबंधकों से संघर्ष करनेवाली संस्था है। इसमें यादव, पवार, शिंदे जैसे कार्यकर्त्ता खाना -पीना छोड़कर चौबीसों खंडे मज़दूरों की सहायता में लगे रहते है। अन्ना साहब ने 'कामगार आघाडी' के द्वारा संसदीय राजनीति में अपनी अलग पहचान बना ली है। उनको बिमला बेन के साथ अवैध सम्बन्ध है।

पवार अन्ना साहब का विरोधी है। वह मुँहफट, स्पष्टवादी, दलित नेता है। पवार एक आदर्श नेता है, जो अपने से ज़्यादा मज़दूर भाइयों को प्यार करता है। कथनी और करनी में एकता उसका लक्ष्य है। आघाडी में दलितों का उन्नमन उसका लक्ष्य है। लेखिका की नारीवादी विचारधारा पवार में हम देख सकते हैं। अन्ना उसका मन विचलित करने के लिए कामगार आघाडी के महासचिव देवीशंकर पांडे की बेटी नमिता को आघाडी में नौकरी देता है। पवार उच्च-नीचत्व मिटाने के लिए नमिता को विवाह करना चाहता है, लेकिन किसी कारणवश वह सफल नहीं होता। अन्ना साहब अपनी काम वासना की पूर्ति के लिए नमिता को भी अपनाने का प्रयास करते हैं । इससे विरोध होकर वह अपनी नौकरी छोड़ देती है। वहाँ के एक नेता शिवहरे कामटेकर माफिया के संग में फँसकर नमिता के पिता देवीशंकर पांडे को मारने का प्रयास करता है। उन्होंने दलितों के बीच में अपना अधिकार ज़माने के लिए उनकी झोंपड़ियों में आग लगवाता है।

'श्रमजीवा' निराधार महिलाओं का एक संगठन है। महात्मा गाँधी के आदेश पर शाह बेन नामक एक वनिता ने मुंबई में इसका प्रारम्भ किया था। सदस्यों में किसी को कोई विषम परिस्थिति आये तो वहाँ की बेलनहारियों से आधी दिहाड़ी चंदे के रूप में इक्कट्ठा कर वह राशि उसको देते थे। श्रमजीवा का माली रामचंद्र भाउ की मृत्यु के अवसर पर बारह बेलनहारियों ने आधे दिन की कमाई देने से इनकार किया था तो शाहबेन ने उन्हें नौकरी से बाहर निकाल दिया, लेकिन उनके द्वारा माफी मांगने पर उन्हें दुबारा काम दिया गया।

'जागो री' विमला बेन द्वारा संचालित वेश्याओं का एक संगठन है। यह कामगार आघाडी का एक भाग है। इसका उद्देश्य वेश्याओं को एक नया काम देना है। इसी बीच कुछ वेश्याओं को जय हिंद ऑयल मिल में काम मिला। उनको वहाँ के अन्य मज़दूरों की काम वासना का शिकार बनना पड़ा। इस प्रकार अनीसा की मृत्यु हो गई। इससे कुपित होकर अन्य सदस्याएँ धंधा बंद कर धरने पर बैठ गयी। अपनी राजनीतिक उन्नति के लिए विमला बेन भी इसमें भाग लिया। उन्होंने विधानसभा में एक हंगामा खड़ा किया। इसके ज़रिए विमला उन नारियों के बीच में एक अलग पहचान बना ली है।

'लोकशाही' कामगार आघाडी का एक विरोधी संगठन है। 'रिचर्ड्सन बेवरी' के प्रबंधकों ने कुछ वर्ष पूर्व मज़दूरों के लिए कई एकड़ ज़मीन सरकार से रियायती मूल्य पर हासिल की थी। सभी कर्मचारियों को उनके पद के अनुसार आवास उपलब्ध कराना लोकशाही की वायदा है। प्रबंधन ने लोकशाही के नेता गोपीनाथ को आमंत्रित कर उनके पिता सेना प्रमुख को लाखों रुपये चुनाव के लिए चंदे में दानकर कामगार आघाडी का वर्चस्व समाप्त कर दें। उन्होंने वहाँ के मज़दूरों को विभिन्न प्रकार के लालच देकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास किया। किन्तु अन्ना साहब अपने भाषण द्वारा मज़दूरों को पुनः 'कामगार आघाडी' की ओर लौट आए। डॉ. गोरक्ष थोरात की राय में "लोकशाही संगठन के चित्रण द्वारा सेना प्रणीत विभिन्न संगठनों का पर्दाफाश करने का प्रयास किया है, जो जातीयता तथा प्रादेशिकतावाद को बढ़ावा देकर अपनी राजनीति की रोटियां सेंकना चाहते हैं।"[4]

'आवाँ' में कई भाषाओं और बोलियों का प्रयोग है। मराठी, गुजराती, तेलुगु, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं को आवश्यकतानुसार प्रयोग किया गया है। कुछ शब्द चित्राजी का अपना ही है। रण्डीरोना, अंतिमेथम आदि। इसमें कुछ कहावतें भी हैं - मज़बूरी का नाम महात्मा गाँधी, मर्द नहीं बटाटा बड़ा, खौल रही मुड़सी गमकी आदि।

कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि - 'आवाँ' में मज़दूर संगठनों के नेता का लक्ष्य प्रबंधकों से सुविधाएँ हासिल करना है। वे वहां अपनी पकड़ मज़बूत करने के लिए प्रयत्न करते हैं और स्वार्थ के लिए संगठन की क्षमता का उपयोग करते हैं। डॉ. राम विनय शर्मा की राय में 'आवाँ' मज़दूर संगठनों के घात-प्रतिघात, तानाशाही, अंतर्विरोध एवं संगठन नेताओं के चारित्रिक पतन, अवसरवादिता और दुर्दमनीय लालसाओं को संजीदगी से उघाड़ता है।"[5]

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. देवकृष्ण मौर्य, हिंदी साहित्य की कतिपय विशिष्ट महिलाएँ एवं उनकी रचनाएँ, पृष्ठ संख्या : 187-188
2. चित्रा मुद्गल, आवाँ, पृष्ठ संख्या : 7-8
3. डॉ. गोरक्ष थोरात, चित्रा मुद्गल के कथा साहित्य का अनुशीलन, पृष्ठ संख्या : 23
4. वही, पृष्ठ संख्या : 49
5. डॉ. राम विनय शर्मा, कथा क्रम, अप्रैल-जून 2000, पृष्ठ संख्या : 106

असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग, कैथोलिकेट कॉलेज, पत्तनमतिट्टा

स्मरणाजंलि

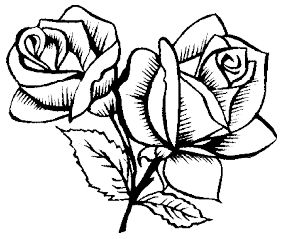

स्मृतिशेष दया प्रकाश सिंहा
(लोकप्रिय हिंदी नाटककार)
(2 मई 1935 - 7 नवंबर 2025)

यशस्वी कलमकार रामदरश मिश्र
(15 अगस्त 1924–31 अक्तूबर 2025)

समकालीन कवि कुमार अंबुज की कविताओं में पर्यावरणीय संवेदना

निषा राफेल

प्रकृति बहुविध स्वरूप की है। वह अनंतस्वरूपा है। वह जड़-चेतन, चर-अचर, सजीव-निर्जीव विविध स्थों में हैं। उसके विविध रूपों में मानव भी एक है। सबसे अधिक चेतन, कर्मरत, सजग, जागृत, संवेदनशील, भावुक, विचारशील, कल्पना प्रवण तथा अभिव्यंजना शक्तिसम्पन्न। वह इस विस्तीर्ण प्रकृति के बीच तथा उसके साथ रहता है। उसे अपने अनुकूल बनाता है तथा गतिशील रहता है। परंतु जैसे जैसे वह विविध क्षेत्रों में विकास करता गया वैसे-वैसे वह प्रकृति से दूर होता गया। प्रकृति से जो रागात्मक संबन्ध रहा था वह कविता के क्षेत्र में भी कम होता गया। जब मानवीय अस्मिता ढूँढने के प्रयत्न प्रारंभ हुए तो साहित्यकारों की दृष्टि प्रकृति की ओर पुनःश्च केन्द्रित हुई । जिस प्रकृति से मनुष्य स्वाभाविकता से जुडा है परंतु जड़वत् मानसिक स्थिति में वह उसे भूल गया था, उसके साथ उसके रागात्मक संबंध स्थापित होने लगे।

पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति संवेदना : प्रकृति मुलतः सृजनधर्मी है। वह प्रचीन भी है और नवीन भी। प्रकृति बहुत ही विशाल है तथा हमारी संवेदनाएँ भी प्रकृति से अभिन्न रू प से जुड़ी हुई है। मनुष्य प्रकृति की ही देन है। वह उसी से निर्माण हुआ है। अनादि काल से मानव का प्रकृति पर निर्भर रहना एक निर्विवाद सत्य है। तब से मानव प्रकृति से सहज भाव से सम्बन्ध था। सभ्यता का युग आने पर दरारें आ गयीं।

आधुनिकता, मशीनीकरण, यात्रिकता, उपभोक्तावाद, जनसंख्या वृद्धि, प्रदूषण आदि प्रकृति एवं पर्यावरण को बडी मात्रा में असंतुलित कर दिया है। मानव केवल भौतिक सुख में डूबता गया और प्रकृति से अलग होता गया। प्रकृति के अधीन रहने की स्वाभाविक स्थिति को फेंक मानव उसके विभिन्न रूपों को आत्मसात कर उस पर भी हावी होता गया। वह प्रकृति पर निर्भर रहने की बगैर स्वयं उसपर हावी होने लगा। पर्यावरण असंतुलन से संबन्धित अपने मन की व्याकुलता कुमार अंबुज जी उनकी कई कविताओं द्वारा पाठकों के सामने रखते हैं।

पर्यावरण असंतुलन पर संवेदना : यथास्थिति कविता में कवि ने आने वाले समय में मनुष्य की अनियंत्रित गतिविधियों के कारण उत्पन्न होनेवाले संकटों का चित्रण किया है और एक गहरी सामाजिक एवं पर्यावरणीय चेतावनी भी दी है।

"धूप तेज़ और सीधी गिरेगी/मगर दानं में दूध नहीं बनेगा/पानी संतुष्टि करने का स्वभाव/खो देगा/गिर जाएगा बैरोमीटर का पारा/डालियाँ हो जाएँगी नंगी"

यहाँ कवि पर्यावरण असंतुलन की भयानक स्थिति को उल्लेख करके कहते हैं कि प्रकृति की सामान्य प्रक्रियाएँ जैसे सूरज की रोशनी अब बेअसर जाएगी तेज़ धूप तो होगी, मगर अनाज़ फलदायक नहीं होगा। जल प्रदूषण की भीषण स्थिति को भी उजागर करके लिखा है .. पानी संतुष्ट करने का स्वभाव खो देगा...। कवि चेतावनी देते हैं कि पर्यावरणीय असंतुल से मौसम बिगड़ पाएगा, पेड सूखेंगे, पत्तियाँ झड जाएँगी। आगे की पंक्तियों में भी कवि पर्यावरण असंतुलन पर व्यथित होकर लिखते हैं - "रोशनी चकाचौध पैदा करेगा/पेड़ अपनी ज़ड़ों की पूरी ताकत खर्च कर देंगे/

हवा, हवानहीं रहेगी/और हम कभी न सूखनेवाला पसीना/ उमस को सौंप देंगे।"

कवि कहते हैं कि कृत्रिम प्रकाश का कोई सार्थक उपयोग नहीं होगा। प्रकृति की जड़ें यानी उसका अस्तित्व नष्ट हो जाएगा। वायु प्रदूषण पूरे पर्यावरण को नष्ट कर देने का दुख प्रकट करके कवि कहते है कि वायुमंडल इतना दूषित हो जाएगा कि शुद्ध हवा नहीं रहेगी। अंततः मनुष्य एक निरंतर थकान, बेचैनी और श्रम में डूबा रहेंगा एक ऐसा पसीना जो कभी सूखेगा नहीं, और पूरी उम्र के हवाले

कर देगा। कवि की व्याकुलता यह है कि प्रकृति पर होनेवाले ये बदलाव हमारे सामाजिक संबन्धों एवं रिश्तों को भी प्रभावित कर देंगे और लोग त्योहारों पर भी खुश नहीं होंगे, गावों की जीवन्तता, उनकी आवाज़ें-संस्कृति सब खत्म हो जाएँगी।

"बहन सत्ताईसवें बरस में भी रहेगी अनब्याही/त्योहार गुज़र जाएँगे चुपचाप/गाय के रँभाने में आवाज़ आना/ खतम हो जाएगी....."

इस कविता द्वारा कवि हमें चेतावनी देते हैं कि प्रकृति के साथ छेडछाड और मानवीय संबन्धों की उपेक्षा हमें एक ऐसे भविष्य की ओर ले जाएगी जहाँ जीवन तो होगा, पर उसमें न स्वाद होगा, न सुख।

पर्यावरण प्रदूषण पर संवेदना : 'धूल' कविता द्वारा कवि पर्यावरण प्रदूषण की ओर इशारा करते है। यह कविता 'धूल' को प्रतीक बनाकर हमारे समय की पर्यावरणीय, बौद्धिक, सांस्कृतिक एवं मानवीय गिरावट को उजागर करती है। "इतिहास के खिड़की से लगातार/गिर रही है धूल/पृथ्वी और सूर्य की किरणों के बीच/धूल की एक मोटी परंत है/बेड़े-बूढे बताते है/अब नहीं रहा धूल का पुराना गहरा रंग/'बदल रहा है धूल का रंग/जैसे बदल रहा है उनके बालों का रंग"

ये पंक्तियाँ वायुमंडलीय प्रदूषण को दर्शाती हैं। समय के साथ धुल का स्प बदल चुका है, यहाँ कवि ने बौद्धिक और सांस्कृतिक जड़ता को भी उजागर किया है कवि की राय में मूल्य और संस्कार भी फीके पड़ चुके हैं।

"धूल भरे लोगों के लिए/बहुत परिचित है धूल का संसार/ वहीं नष्ट होने से बचाते हैं/वे अपने बीच.../धूल का संगीत वैभव के सन्नाटे में गूँजता है।"

आगे की पंक्तियों द्वारा कवि कहते है कि जो लोग इस धूल अर्थात् (प्रदूषण, जड़ता, गिरावट) के अभ्यस्त हो गए है, वे इसे सामान्य मानने लगे है। वे उसमें ही अपने बीज या अस्तित्व को बचाकर जीते हैं। कवि के मन में अब भी यह उम्मीद बची है कि हम इस धूल को उपजाउ मिट्टी में बदल सकें।

कवि की राय में प्रकृति, स्वास्थ्य, परंपरा और संस्कृति में भी पर्यावरण में आए बदलाव का असर पड़ गया है। निम्न पंक्तियाँ इसका सूचक है- "ज़रा सी देर में नीम पर निंबौरी आ गई/और आँखों में पानी/पत्ते पीले पड़ते हुए डाल छोडने लगे/खतम हो गई बैलों की जुगाली/ज़रा - सी देर में मैदान बनते हुए खत्म हो गए/वृक्ष और पहाड़/खतम हो गए चावल, गेहू और रसोईधर के चूहे/ज़रा सी देर में हरित-क्रान्ति फैल गई/फैल गया हैजा"

कवि यहाँ प्रकृति में हो रहे बदलावों का जिक्र करता है, पेड़ों के पत्ते गिरने लगे, पानी की गुणवत्ता स्वास्थ्य केलिए हानिकारक हो गई। कृषि संस्कृति का धीरे-धीरे अंत, खेत, जंगल, पहाड़ सब खत्म होते जा रहे हैं। हरित क्रांति के नाम पर परंपरागत खेती की जगह नई तकनीक आ गई। पर्यावरणीय बदलाव के प्रति जागरूक रहने की आवश्यकता को भी कवि ने यहाँ व्यक्त किया है। कविता की आखिरी पंक्तियों में चिड़िया की आवाज़ द्वारा कवि कहते हैं कि 'उठो, काम का वक्तहो गया।'

ज़मीन के विनाश पर संवेदना : "कटे हुए खेत को देखकर" कविता द्वारा कवि ने धरती और खेतों के प्रति उनकी कृतज्ञता, संवेदना और आत्मीय जुड़ाव की भावना व्यक्त किया है।

"ज़मीन का यह हिस्सा सबसे प्रसन्न है/सबसे ज़्यादा जिन्दा है ज़मीन यहाँ/स्पदन और ऊष्मा से भरी हुई/प्रसव के बाद की यह ज़मीन/बगल में लेटे शिशु-गट्ठर को देखती हुई।/ पुलक रही है/चमक रही है डंठलों पर/उत्साह भरी ममता/ और थोड़ी सी सन्तुष्ट मकान.....

इस कविता में कवि खेतों की कटाई के बाद की ज़मीन को देखता है और उसमें एक विशेष प्रकार की उर्जा, जीवन और संतोष महसूस करता है। यहाँ कवि खेत को एक माँ की तरह देखता है, जिसने प्रसव के बाद अपने बच्चे को जन्म दिया और अब शांति व संतोष का अनुभव कर रही है। कवि चाहता है कि इस धरती के इस रूप को वह अपनी आँखों में कैद कर ले, इसकी गोद में लेटे और इसका सुख अनुभव करे।

"बस रोको! रोको ड्राइवर!/मैं यही उतरना चाहता हूँ/मुझे सचमुच आना था यहीं तक/हाँ यही हो रही थीं मेरी प्रतीक्षा

कि इस वक्त/ /बेहद ज़रूरत है इस ज़मीन को/थोड़े-से प्यार की, थोडे थोडे से धन्यवाद की!"

प्रकृति एवं ज़मीन के साथ कवि की आध्यात्मिक एवं भावनात्मक एकता का संकेत इन पंक्तियों में दृष्टव्य है कवि का मन खेत का सौन्दर्य से भर गया है। वह उस दृश्य से दूर नहीं जाना चाहता। उन्होंने वहीं रुक जाना चाहता है क्योंकि वही उसका गंतव्य था। मानो उसकी आत्मा उसी धरती में विश्राम पाना चाहती हो। कवि को लगता है कि यह धरती उसे बुला रही थी। उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। यह धरती जो जीवन है, उर्जा है, और सृजन की शक्ति है जिसकी उपेक्षा आज के युग में लगातार हो रही है। इस सत्य की ओर हमारे ध्यान आकर्षित करके कविता हमें अंतिम पंक्तियों में एक भावुक संदेश देती है कि हमें अपनी धरती के प्रति प्रेम और आभार का भाव रखना चाहिए क्योंकि वहीं हमारे जीवन का आधार है।

जंगलों की तबाही पर संवेदना (Deforestation) : मनुष्य और प्रकृति के रिश्ते पर गहराई से विचार करनेवाले कुमार अंबुज 'बचे-खुचे जंगल के साथ' कविता द्वारा जंगल के उस हिस्से को चित्रित करते हैं जो अभी पूरी तरह नष्ट नहीं हुआ है, लेकिन धीरे-धीरे विलुप्त होने की कगार पर है।

'सडक किनारे की दूरी से/जितना भी वह दिखता था बचा हुआ/भीतर उतना नहीं बचा था/जैसे मैं भी दिखता हूँ जितना बचा हुआ कुछ दूरी से/अंदर उतना बचा नहीं रह गया था ...."

कवि कहता है कि बाहर से देखने पर तो लगता है कि जंगल अभी भी बचा हुआ है, लेकिन जब भीतर झाँका जाए तो असल में वहाँ कुछ भी शेष नहीं है, अर्थत् असल में जंगल भीतर से खोखली हो चुकी है। कविता में कवि ने जंगलों के धीरे-धीरे समाप्त होते स्वरूप का वर्णन किया है। कवि की राय में जंगल अभी खंडहर के समान है जो कभी पूर्ण और जीवंत था, अब वह बिखरा हुआ, टूटा-फूटा है। कवि ने जंगल की पूर्व-स्मृति यहाँ प्रस्तुत की है जो कभी वृक्षों में थी जैसे सागौन, तेंदु और बबूल, अब केवल ठूंठ बनकर रह गई हैं।

"पश्चिम में हहराते बाँस के दस-बारह झुण्डों ने/जंगल के दिल खुश बना दिया था/जिसकी खुशी बंदरों और तोतों से होती हुई/पहुँचती थी हर उस आदमी तक जो वहाँ होता था/ यह छीजते जाते जंगल में जिजीविषा का ही दृश्य था।/कि हवा बाँसें में से गुज़र कर बचा रही थी बाँसुरी...."

कविता की ये पंक्तियाँ जंगल के जीवन की जीवंतता को दिखाती हैं - जहाँ बॉस, बंदर और तोते होते थे, जो जंगल को आबाद करते थे। लेकिन अब वह अवाज़ें मनुष्य तक नहीं पहुँचतीं। अब जंगल धीरे-धीरे नष्ट हो रहा है, लेकिन फिर भी उसमें जीवन की झलक शेष है।

"जैसे अपनी उदासी तोड़ते हुए जब-जब/मैं संगीत में झूमता हूँ/प्रकृति चली आती है/अपनी झरनों, बीहड़ों और अरण्यों के साथ/विस्तारित करती हूई मुझे नए प्रदेशों में"

कविता की इन पंक्तियों में प्रकृति के साथ कवि की आत्मीय रिश्ता प्रकट है। कवि कहता है कि जब भी वह संगीत में डूबता है, प्रकृति उसके पास आकर वह उसे अपने झरनों, जंगलों और आरण्यों के साथ नए प्रदेश में ले जाती है। यहाँ कवि प्रकृति और इंसान के बीच के आंतरिक रिश्ते को प्रकट करते हैं।

यह कविता प्रकृति से टूटते रिश्तों और पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता को दर्शाती है। कवि यहाँ जंगल, पेड़ जीव-जंतुओं के माध्यम से इस बात की ओर इशारा करती है कि मानव अगर इसी तरह प्रकृति से दूर होता रहा, तो न केवल जंगल नष्ट होंगे, बल्कि मानव का अस्तित्व भी नष्ट हो जाऐंगा।

वायु प्रदूषण पर संवेदना : स्वच्छ वायु हमारे जीवन केलिए अत्यंत आवश्यक है, लेकिन आधुनिक जीवनशैली और तेजी से बढ़ते उद्योंगों के कारण वायु प्रदूषण लगातार बढ़ रहा है। वायु प्रदूषण आज के समय की एक गंभीर समस्या है। इस प्रदूषण का असर हमारे स्वास्थ्य पर सीधा पड़ता है। हवा में हानिकारक पदार्थों जैसे धूल, धुआँ, विषैली गैंस मिल जाना वायु प्रदूषण के कारण बन जाते हैं। मानव के स्वास्थ्य और पर्यावरण केलिए नुकसानदायक वायुप्रदूषण को गहराई से दर्शाती है कुमार अंबुज की कविता 'इतनी धूल'

"इतनी धुल चली आती है जीवन में/कि मरते दम तक

कोई छुड़ा नहीं सकता पीछा/जो बारीश की तरह झरती है आपके भीतर..../वह जमा हो जाती है उन उँचाईयों पर भी/ जहाँ पहुँचते नहीं किसी के हाथ"

कविता 'इतनी धूल' में कवि ने हमारे जीवन में फैलती जा रही धूल (प्रदूषण) को प्रतीक रूप में प्रयोग किया है। कवि कहता है कि जीवन में इतनी धुल भर गई है कि कोई चमक नहीं बची। यह धुल हर वस्तु को इस कदर ढक लेती है कि उसका असली रूप दिखाई ही नहीं देता। यह धूल केवल भौतिक रूप से ही नहीं, बल्कि मानसिक, बौद्धिक और सामाजिक जीवन में भी फैल गई है। यह हमारे विचारों संवेदनाओं और मूल्यों तक को ढकने लगी है।

"कलाकृतियों, किताबों और कपड़ों पर ही नहीं/किडनी में, पित्ताशय में वह इकट्ठा हो रही है लगातार/अंतरिक्ष में भी है उसी का साम्राज्य...../वह ताकत की कुर्सियों पर मिलती है/और न्यायालयों में फैसलों में/यही है जो जम जाती है साफ, पारदर्शी चीज़ों पर/जरा-सी चुक हो तो उड़कर बैठती है वाक्यों के बीच में।"

कवि कहते हैं कि यह धूल केवल वस्तुओं पर ही नहीं, बल्कि हमारे सोचने-समझने की शक्ति को भी प्रभावित कर रही है। धूल का साम्राज्य हर जगह फैल गई है। यह धूल सत्ता न्याय और प्रशासन तक में है। पारदर्शिता के स्थान पर अब धूल छा गई है, जिससे सत्य और न्याय भी ढक गए है।

धुल का यह प्रतीक वर्तमान समय की उस स्थिति को दर्शाता है, जहाँ प्रदूषण केवल पर्यावरण तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह हमारे जीवन के हर पहलू में घुस गया है। यहाँ कवि ने धूल को अहंकार और नश्वरता का प्रतीक के रूप में भी माना है।

"अश्वमेधी काफिलों के पीछे छूट जाता है धूल का गुबार/ एक दिन सबसे ताकतवार आदमी भी गिरता है - धप्प!/ .....निर्माण में उडती है वह/ध्वंस के बाद भी बची रहती है वह।"

कवि की राय में 'अश्वमेधी काफिलें अर्थात् बडी बडी विजय यात्राएँ, युद्ध इन सबके पीछे आखिर केवल धूल का गुबार ही रह जाता है। अर्थात् अंत में सब धुल में मिल जाता है। अगली पंक्तिमनुष्य के अहंकार के पतन को दर्शाती है। जब व्यक्तिया सत्ता गिरती है, तो वह धूल में समा जाती है। यह पतन की प्रतीकात्मक अभिव्यक्तिहै। धूल यहाँ प्रतीक है उस सच्चाई का जो हर चमक, हर ऊँचाई, हर निर्माण और हर ध्वंस के बाद भी शेष रहती है। कविता की ये पंक्तियाँ जीवन की क्षणभंगुरता सत्ता के अहंकार और समय के प्रभाव को दर्शाती है। कुमार अंबुज की यह कविता केवल पर्यावरणीय समस्या नहीं, बल्कि आधुनिक जीवन के नैतिक, सामाजिक और मानसिक प्रदूषण की ओर भी इशारा करती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि कवि कुमार अंबुज की कविताओं में पर्यावरण विमर्श एक महत्वपूर्ण और संवेदनशील पक्ष के रूप में उभरता है। वे प्रकृति और पर्यावरण के नष्ट होते स्वरूप को न केवल शब्दों में चित्रित करते हैं, बल्कि उसके पीछे छिपे सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भों को भी गहरी पडताल करते हैं। कवि दिखाते हैं कि मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति से संबंध तोड़ लिया है, और अब वह उसी का परिणाम भुगत रहा है। संवेदना की गहराई से यह संबंध फिर से जोड़ने की पुकार भी उनकी कविताओं में दिखाई देती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. समकालीन कविता : प्रकृति और पर्यावरण, पृ. 146
2. अमीरी रेखाः चाँद तुम्हारे साथ कुछ दूर तक पृ. 83
3. किवाडः सिन्ध पृ. 102
4. अतिक्रमणः जब तक हूँ, पृ. 46
5. अमीरी रेखाः पत्थर हूँ पृ. 69
6. आधुनिकिक हिन्दी कविताः प्रकृति और पर्यावरण, पृ. 160
7. किवाडः धूल, पृ. 52
8. किवाडः ज़रा सी देर में, पृ. 28
9. किवाडः कटे हुए खेत को देखकर, पृ. 56
10. अतिक्रमणः बचे-खुचे जंगल के साथ, पृ. 116
11. उपशीर्षक - इतनी धूल, पृ. 30

शोधार्थी, महात्मा गाँधी यूनिवर्सिटी
कोट्टयम, सेन्टर-कातलिकेट कॉलेज, पत्तनंतिट्टा

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान उत्थान के लिए संघर्षरत युवावर्ग

स्टेनी फ्रान्सिस

किसान की कथा और व्यथा को समाज और सरकार के सामने प्रस्तुत करना साहित्यकार का लक्ष्य रहा है। किसान समाज के प्रति सहानुभूति पैदा करने में निम्न उपन्यासों के रचनाकार विशेष सफल भी हुए हैं। 'माटीराग', 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो', 'चलती चाकी', 'कालीचाट', 'आदिग्राम उपाख्यान', 'यह गाँव बिकाउ है', 'फाँस' इत्यादि उपन्यासों में किसान जीवन की दर्दनाक परिस्थितियों का अंकन हुआ है। उनके सपने, संघर्ष और प्रतिरोध ही किसान साहित्य के निचोड़ है। बेहतर भविष्य के सपने देखने केलिए भारतीय किसानों को प्रेरणा देनेवाले युवा वर्ग देश केलिए अमूल्य धरोहर है। भारत में युवाओं की जनसंख्या अन्य देशों से अधिक हैं। इसी कारण भारत को युवाओं का देश कहा जाता है। समाज का सबसे सक्रिय वर्ग युवाओं का होता है। कृषि क्षेत्र युवाओं को राज़गार के कई सुनहरे अवसर प्रदान करते हैं। भारत को एक नई कृषि क्रांति की ज़रूरत है। जिसे युवाओं द्वारा साकार किये जा सकते हैं। वर्तमान समय में कृषि एवं किसान की बिगड़ती हालत को ठीक करने केलिए जी तोड़ मेहनत करने वाले युवाओं के योगदान को साहित्य क्षेत्र ने भी सहारा है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यास भी ऐसे नौजवानों के झलकों से भरे पड़े हैं।

'परती परिकथा' उपन्यास का जित्तन बंजर धरती को फिर से उपजाउ बनाने का लक्ष्य लेकर अपना गाँव वापस लौट आया था। वह नूतन प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल खेती में करता है। ट्राकटर की मदद से धरती को जोतकर उसमें गुलाब पौधे लगाता है। आंदोलन पर उतरे गाँववालों को वह कोसी परियोजना का असलीयत समझाता है और उन्हें लुत्तो जैसे भ्रष्ट राजनेताओं का पोल खोल देता है। 'तितली' उपन्यास के तितली, 'चाक' उपन्यास के किसान पात्र रंजीत जैसे युवा किसान समस्याओं को जड़ से मिटाने में तथा किसानों में जागरण पैदा करने में कोशिश करते नज़र आते हैं।

भारतीय कृषि मुख्यतः मानसून पर निर्भर है और भारत के अधिकांश कृषि क्षेत्र असिंचित है। सिंचाई योजनाओं का लाभ सीमित किसानों को ही प्राप्त होता है। भारत जैसे उष्टकटिबंधीय मानसून देश में सिंचाई एक महत्वपूर्ण कारक है जो कृषि को प्रभावित करती है। सुनिश्चित सिंचाई के बिना कृषि में प्रगति लाना संभव नहीं है। 'सलत्नत को सुनो गाँववालो' उपन्यास के पात्र जकीर ऋण लेकर डीजल पंप लगाता है और गाँव के सभी जातियों एवं धर्मों के किसानों को पानी उपलब्ध कराता है। इसके वज़ह से गाँव में जोरदार फसल होती है। उसी तरह सल्तनत और भैरव मिलकर नहर को दुरुस्त करने के लिए अभियान चलाते हैं। वे नेहर तट पर बसे गाँवों में दर्जनों कार्यकर्ताओं के साथ घूमकर दोनों जन जागरण करते हैं, बैठकें और सभाएँ आयोजित करती है, रैलियाँ और जुलूस निकालते हैं। सल्तनत का खलिहानों में घूमकर सबसे बात करना, गाँव की आगे बढ़ने की जगह पिछड़े चले जाने के मुद्दे पर लोगों की राय जानना, नहर की मरम्मत के लिए कदम उठाना किसानों के प्रति उसकी चिंता को प्रकट करती है। जकीर के मौत के बाद सल्तनत आठ दिन तक बिना अन्न-जल ग्रहण किए बिना सल्तनत अनशन पर बैठती है। सल्तनत की बिगड़ती हालत देखकर भैरव चिंतित होता है और उससे अनशन खतम करने को बोलता है, पर वह कहती है "इस आंदोलन को स्कना नहीं चाहिए। नहर में पानी आ जाए तो उस पानी से मुझे जलांजलि देना, मेरी आत्मा तृप्त हो जाएगी।"[1] 'चलती चाकी' उपन्यास में श्वेतानंद दौलतपुर की सिंचाई संबंधी समस्या को दूर करने केलिए बूँद सिंचाई यानी ड्रिप एरिगेशन का सुझाव देता है तथा गाँव में उपलब्ध दो ट्यूबवेल से अधिक से अधिक खेतों की सिंचाई करने की योजना बनाता है। वह विकास अधिकारी को किसानों की समस्याओं के बारे में अवगत कराता है। जब सरकार की तरफ से कोई फण्ड नहीं मिलता है तो वह किसानों की बैठक बुलाकर उन्हें ड्रिप एरिगेशन के बारे में समझाता है। किसानों

से पैसे इकट्ठा करके वह एरिगेशन के साधन खरीदते हैं। श्वेतानंद गाँववालों को बरसात का पानी सहेजने और गाँव के तालाब, गड्ढों को फिर से पुनर्जीवित करने का सलाह देता है। उसके अनुसार ज़मीन बंजर नहीं है, हमने बना दिया है। श्वेतानंद के कहे अनुसार डेढ़ सौ लोगों के श्रमदान से तालाब की खुदाई होती है।

भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है। गाँव के उत्थान से ही किसान उत्थान संभव है। आज भी गाँवों में बुनियादी ज़रूरतों की कमी है। स्वतंत्रता के इतने सालों के बीत जाने पर भी शहर और गाँव के बीच के खाई घटने की जगह बढ़ता गया। युवावर्ग अपने प्रयत्नों द्वारा इन्हीं खाई को पाटने की कोशिश करते हैं। सल्तनत और भैरव के प्रयत्नों से पूरे इलाके में परिवर्तन आते हैं। आसपास के गाँवों के पढ़े-लिखे बेरोज़गार लड़के इनसे वैचारिक सहमति रखने लगे। "ये लड़के अक्सर यहाँ आने लगे और पढ़ाई से लेकर विभिन्न रिक्तियों, उनके आवेदनों और तैयारियों पर परस्पर जानकारियों और सूचनाओं का आदान-प्रदान होने लगा।"[2] ये बेरोज़गार सहकारी खेती के लिए कदम उठाते हैं। सल्तनत और सामूहिक नेतृत्व का महत्त्व समझाता है। सलतनत और साथियों के परिश्रम फलस्वरूप लतीफगंज विकास समिति अस्तित्व में आते हैं। वे गाँव के पुराने जल भंडार, आहरों-पोखरों को फिर से पुर्नजीवित करते हैं। पानी की किल्लत को दूर करने केलिए चालीस-पचास दिनों तक चले अभियान में खेती से जुड़े और उस पर आश्रित हिंदू, मुसलमान, हरिजन, सभी वर्ग के लोग श्रमदान केलिए आए थे। "ऐसा जनसमर्थन हो तो गाँव का क्या देश का नक्शा रातोंरात बदला जा सकता है। हर नामुमकिन को मुमकिन का जवाब दिया जा सकता है। ऐसे ही जागरण को कहते हैं पाताल से पानी निकालना। तौफीक साफ-साफ देख और महसूस रहे थे इसके पीछे छिपी उस मेहनत और मशक्कत को जिसे भैरव और सल्तनत ने बूँद-बूँद करके एकत्रित किया था।.....लोगों का विश्वाँस पक्का हो गया कि वाकई ये लोग पूरे समर्पण और जीजान से गाँव के लिए कुछ करना चाहते हैं।"[3] 'चलती चाकी' उपन्यास में श्वैतानंद ने अपने मन में दौलतपुर के कायाकल्प केलिए अनेक योजनाएँ बनायी थीं। वह देश के प्रतिष्ठित कृषि वैज्ञानिकों को बुलाना चाहता था,जो लोग किसानों को खेती के आधुनिक नुस्खे समझाएंगे और पैदावार बढ़ाने की जानकारी देंगे। जैविक खेती रासायनिक खेती की तुलना में कम लागतवाली, स्थाई और स्वस्थ है। फलस्वरूप मिट्टी की उर्वरता शक्तिमें कमी आई। इन विषैली चीज़ों ने पानी, हवा, मिट्टी को जहरीला बना दिया। 'चलती चाकी' उपन्यास में दौलतपुर तथा आसपास के गाँवों में जैविक खेती के उपायों पर अमल करने केलिए तत्पर श्वेतानंद का चित्र उपन्यासकार प्रस्तुत करते हैं। मृदा परीक्षण केलिए काशी गए श्वेतानंद जैविक कृषि की खूबियों के बारे में जानकर किसानों की मद्द करना चाहता है। वह जानता है कि देश के किसान इतने जागरूक और पढ़े-लिखे नहीं है कि बाज़ार के रूझान के अनुरूप खेती करें। किसानों को जैविक खेती करने, बायोगैस प्लांट लगाने के लिए तथा गाय-भैंस को पालने का सलाह देता है। गाँववालों की मदद करने में उन्होंने कोई अवसर नहीं छोड़ा। वह गाँव में एक कृषि केंद्र खोलने की योजना भी बनाता है जहाँ किसानों को निःशुल्क परामर्श दिया जा सके। श्वेतानंद गाँव के लड़कों को अंग्रेज़ी सिखाकर उन्हें साक्षर बनाने की कोशिश करता है। किसानों की कमाई बढ़ाने के लिए गेहूँ, धान, आलू-प्याज के अलावा फलों की खेती करने, आम, नींबू, अनार, आंवला, पपीता वगैरह के बगीचा लगवाने और फलों की बिक्री से नगद पैसा कमाने का निर्देश देता है। इसके अलावा फसलों की हेर-फेर करके ज़मीन की उर्वरता बढ़ाने और जल स्तर सुधारने का सलाह देता है। शेवतानंद के कहे अनुसार दूसरे गाँववाले पपीते की खेती शुरू करते हैं। शेवतानंद के इन्हीं प्रयत्नों से किसानों की उम्मीद बढ़ती गई।

देश की आज़ादी के बाद न जाने कितनी सरकारें आयीं और गयी,लेकिन किसानों की बुनियादी समस्याओं का हल नहीं हुआ। इसलिए अघोघ मुख्य रूप से एक गैर-राजनैतिक किसान संगठन बनाने की पक्ष में था। क्योंकि देश के ज्यादातर किसान संगठन संसदीय राजनीति में जाकर शामिल होते हैं। उसके अनुसार समस्याओं से भागने से कुछ भी हासिल नहीं होता है। वह नँगला गाँव के किसानों को ही नहीं, भारत के विविध भागों में बसे हुए किसानों को आत्महत्या के चंगुल से बचाकर नई कृषि नीतियों का खुलासा करना चाहता था। लेकिन अघोघ के अध्यापक रतन सिंह उसे समझाता है कि बिना राजनीतिक समझ के चलाए गए आंदोलन व्यर्थ है। 'सल्तनत को सुनो

गाँववालो' उपन्यास में सल्तनत और साथियों मिलकर लोकसभा चुनाव के समय गाँववालों को टेकमल जैसे भ्रष्ट राजनेता को वोट देने से आगाह करते हैं। वे चाहते थे कि किसान जातीय आधार से उपर उठकर सच्चे और ईमानदार नेता चुने। लेकिन नहर जैसा जीवन मरण वाला मुद्दा उठाने के बाद भी गाँववालों के जातीय मोह को वे समाप्त नहीं कर पाए और चुनाव में टेकमल की जीत होती है। लेकिन सल्तनत हार नहीं मानती है। विधान सभा के चुनाव में लतीजगंज विकास समिति की ओर से तारानाथ उम्मीदवार के तौर पर चुना जाता है और चुनाव में तारानाथ की जीत होती है। लोकसभा चुनाव में टेकमल को चुनौती देते हुए लवीस के उम्मीदवार खड़े होने पर उपन्यास समाप्त होता है। 'माटीराग' उपन्यास में सरकार द्वारा पारित की गए कृषि कानूनों को वापस लेने केलिए सड़क पर आंदोलन करनेवाले नौजवान लड़के और लड़कियों का चित्र उपन्यासकार खींचते हैं। वे किसानों की खुशहाली केलिए दिन-रात मेहनत कर रहे हैं। किसानों के प्रति सरकार के रवैये से वे बिलकुल खुश नहीं हैं। उनके गुस्सा लावा बनकर बाहर निकलती है। "हमें रोकने के लिए सरकार ने सड़क ही खुदवा डाली है। सरकार का काम सड़कें बनवाना है, सड़कें खुदवाना नहीं।"[4]

'फाँस' उपन्यास के युवा वर्ग भी किसान उत्थान केलिए अपध्द्ध पूरी ताकत लगा देते हैं। सुनील का बेटा विजयेन्द्र मन्थन का आयोजन करता है जिसमें भारत के अलग-अलग राज्यों के किसान अपनी समस्याओं एवं परेशानियों को एक दूसरे से बाँटते हैं उनके समाधान केलिए तरकीब ढूँढ़ते हैं और जीरो बजट फार्मिंग, विष रहित खेती आदि विषयों पर चर्चा करते हैं। शिबू की बेटी कलावती का एक ही मकसद है- "किसान आत्महत्याओं को रोकना। वह विजयेन्द्र से कहती है मैं तुमसे बराबर कहती आयी, आज भी कह रही हूँ, अमेरिका जाओ, इजिप्ट जाओ, चाँद पर जाओ या कहीं और-जहाँ भी संजीवनी मिले, ढूँढ़कर लाओ। मेरा बाप मरा। तुम्हारा बाप मरा। तीन लाख मर चुके। अब आगे एक भी नहीं।"[5] किसानों को कृषि संबंधी जानकारी देने केलिए कलावती एक मिनी कृषि अनुसंधान केंद्र खोलती है। अशोक आत्महत्या ग्रस्त किसानों की संतानों केलिए कलावती कुंज नामक एक संस्था चलाते हैं। 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' उपन्यास के पात्र जकीर के अनुसार गाँव को बचाने के लिए गाँव से प्यार करनेवालों की बड़ी ज़रूरत हैं। जकीर केलिए काश्तकारी केवल पेशा नहीं है, शौक भी है। भारत के ज़कीर जैसे नौजवानों की ज़रूरत हैं जो भारतीय कृषि को उपर उठा सकें। उसी तरह भैरव भी गाँव में ही रहकर खेती-बाड़ी चाहता है। वह यह साबित करना चाहता है कि कृषि-कार्य दूसरे किसी भी धंधे से ज्यादा सम्मानजनक, राष्ट्रहितकारी और अनिवार्य कर्तव्य है। सल्तनत के अनुसार लतीफगंज की माटी का कोई कसूर नहीं है। वह माटी तो सोना है, असली सोना है। वहाँ के लोग इस माटी का इस्तेमाल करना नहीं जानते हैं। उसी तरह चलती चाकी उपन्यास के श्वैंतानंद के अनुसार दौलतपुर की ज़मीन बंजर नहीं है, बल्कि लोगों ने ही इसे बंजर बना दिया है। यानि ये लोग जानते हैं कि खेती के प्रति विमुखता ही कृषि संकट का मुख्य कारण हैं। इसलिए इस समस्या का निवारण पहले होना चाहिए।

अशिक्षा सबसे बड़ा अभिशाप है। शिक्षा के बिना मनुष्य जानवर के समान होता है। ज्यादातर भारतीय किसान अशिक्षित है, जिनके वज़ह से वे निरंतर शोषण के शिकार होते रहते हैं। शिक्षा से ही इस शोषण चक्र को तोड़ा जा सकता है। 'यह गाँव बिकाउ है' उपन्यास के अघोघ और उसके साथियाँ सलीम, राजेश और कुक्कू गाँव की समस्याओं से अवगत होकर नँगला गाँव में एक पुस्तकालय की स्थापना करते है। क्योंकि अघोघ जानता था कि शिक्षा से ही किसान उत्थान संभव हो सकता है। जब तक किसान खुद नहीं पढ़ेगा, तब तक वह ऋण और ब्याज के संबंधों को समझ नहीं सकेगा, उसका उत्थान नहीं होगा। शिक्षित होकर ही वह अन्याय के विरुद्ध उठा सकते हैं, प्रतिरोध कर सकते हैं। 'कालीचाट' उपन्यास के दिनेश सरकार द्वारा चलाये जा रहे साक्षरता अभियान केलिए भोपाल जाकर प्रशिक्षण लेकर लौटता है। उसके अनुसार गाँवों में साक्षरता के साथ-साथ बुनियादी सुविधाओं को लेकर भी काम करने की आवश्यकता है। "लोगों के पास रोज़गार नहीं है... खेती में पेट भरना मुश्किल हो रहा है। पीने का पानी नहीं है... सड़कें नहीं हैं... स्वास्थ्य सुविधाएँ नहीं हैं... बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा नहीं है और ढेरों रोज़मर्रा की समस्याएँ हैं। आख़िरकार आज़ादी के सैंतालिस साल बाद भी आम

आदमी इन सुविधाओं से वंचित क्यों है?"[6] वह जानता है कि सारी समस्याओं का जड़ लोगों का निरक्षर होना है और शोषण के खिलाफ शिक्षा एक बहुत बड़ा हथियार है। लेकिन गाँववालों को सिर्फ हस्ताक्षर करना सिखाकर सरकार जिले को पूर्ण साक्षर घोषित करते है। दिनेश बखूबी जानता है कि सरकार को लोगों की नहीं आँकड़ों की चिंता है।

भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया में सरकार निजी भूमि का अधिग्रहण करके भूमि के मालिकों को भूमि की कीमत अदा करती हैं। फलस्वरूप किसान अपने ज़मीन से विस्थापित होते हैं। ज़मीन के छीन जाने का भय किसान को बेचैन करता है। 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास में केमिकल हब के निर्माण केलिए उन्नीस हज़ार एकड़ ज़मीन की ज़रूरत है, जिसके लिए गाँव के किसानों से उनकी ज़मीन बिकवायी जा रही है। ज्यादातर किसान अपनी ज़मीन बेचना नहीं चाहते। "अरे मज़ाक है? क्या हम अपनी ज़मीन भला क्यों देंगे किसी फैक्ट्री को?.... आप तो जानते हैं मातब्बर, कि हमारी ज़मीन ही हमारी फैक्ट्री है।"[7] राजनेता भी कंपनी के अधिकारियों के साथ मिलकर किसानों को ज़मीन बेचने केलिए मनवाने में लगे हुए है। वे लंबे लंबे भाषण देते हुए कहते हैं- "आज की तारीख़ में एक-एक बिस्वे में एक घर के चार-चार लोग खेती करते हैं। नतीजा दो जून का भात भी ठीक से नसीब नहीं होता। फटा-चींथड़ा पहनते हैं। बात-बात पर झगड़ा-सिर फुटौवेवल करते हैं। जब कारख़ाने में नौकरी लगेगी तो सबका दुख-दलिद्दर दूर होगा।हर महीने सात तारीख़ को वेतन मिलेगा। न सूखे-बरसात की फिकिर, न फसल को कीड़ा-पाला लगने का डर।"[8] वर्षों पहले सी.पी.टी कम्पनी ने भी किसानों की ज़मीन का अधिग्रहण किया था। उन्हें मुआवज़ा न मिला न ही नौकरी। उपन्यासकार लिखते है- "साढ़े तीन सौ एकड़ ज़मीन का यह अहाता कभी सी.पी.टी कम्पनी आयी थी। कोई डेढ़ सौ किसानों की ज़मीन को उन्हें यह लोभ देकर हथियारा गया था कि जब कारख़ाना शुरू हो जाएगा, उन्हें नौकरी दी जाएगी। खेती-बाड़ी नहीं, नौकरी करते हैं, इसलिए बाबू हैं, अमीर हैं। कारख़ाना जब शुरू हुआ तो इन किसानों को ठेके पर मजदूरी मिली भी थी। लेकिन फिर जाने क्या हुआ कि कम्पनी बन्द हो गयी। जिन किसानों ने ज़मीन दे दी थी, वे घर के रहे न घाट के। आज की तारीख़ में उनकी ज़मीन कम्पनी के कब्ज़े में है और कम्पनी अब मलबे में बदल गयी है।"[9]। किसान अपनी ज़मीन बेचकर दूसरों की चाकरी करना पसंद नहीं करते। ज़मीन अधिग्रहण के खिलाफ आदिग्राम के जवान कुछ करना चाहते थे। रघुनाथ आदिग्राम गाँव के हालत का अध्ययन करके विभिन्न पार्टियों को मिलाकर एक जमीन अधिग्रहण प्रतिरोध समिति का गठन करता है। मीटिंग में रघुनाथ दूसरों से संघर्ष करने का आह्वान करता है यदि हम अपनी ज़मीन बचाने के लिए खुद आगे नहीं आये तो याद रखिए, साक्षात गौरांग महाप्रभु भी हमारी ज़मीन नहीं बचा सकते। "हमें अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। लड़ने के लिए क्या चाहिए सबसे पहले चाहिए कलेजा, जो आप सबके पास है। हम वीर सुभाषचन्द्र बोस, विनय-बादल-दिनेश, बाघा जतिन, खुदीराम बोस के वंशज हैं। लेकिन सिर्फ जिगर के दम पर हम यह लड़ाई नहीं जीत सकते। सो दूसरी चीज़ जिसकी हमें ज़रूरत पड़ेगी, वह है हथियार।[10] युवावर्ग द्वारा ज़मीन अधिग्रहण के खिलाफ विद्रोह किया तो पार्टि ने अपनी ताकत से इन लोगों को निःशब्द किया। पूजा के अवसर पर आंदोलनकारियों पर गोलियाँ बरसाई गई, जिनमें छियासठ लोग मारे गये। अंत में कंपनी के अधिकारियाँ और पार्टी के राजनेता मिलकर किसानों के ज़मीन हड़प लेते हैं। इस काम केलिए उन्होंने गाँव के अन्य नौजवानों को एसपीओ (स्पेशल पुलिस ऑफिसर) की ट्रेयिनिंग देकर गाँववालों के ही विरुद्ध इस्तेमाल किया।

किसानों की इतनी दुर्दशा के बावजूद भी, आज के युवा पीढ़ी में इन सबसे उभरने का एक जुनून है। अघोघ, सविता तथा गाँव के अन्य नौजवान किसानों के उत्थान केलिए प्रयत्नरत है। अघोघ शुरू से ही किसानों के मदद करना चाहता था,लेकिन दोस्तों के सहयोग उसे नहीं मिल रहा था। उसके निरंतर प्रयत्न के बाद ही दोस्तों ने किसान संगठन केलिए सहमति दी थी। गाँव में रहना तथा खेतों को निहारते रहना उसके मज़बूरी में शामिल था।वह वर्तमान परिस्थिति में बदलाव लाना चाहता था। मास्टर रतनसिंह ने उसे समझाया था कि दुनिया में कहीं भी रहकर समाज में बदलाव ला सकता है। यह 'गाँव बिकाउ है' उपन्यास में सविता नामक स्त्री पात्र है जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। किसान आंदोलन में महिलाओं को मुख्यधारा में लाना काम सविता ने किया था। इसके अलावा किडनी आंदोलन चलाना, गाँव-गाँव जाकर अभियान चलाना,पढ़े-लिखे नौजवानों

को किसान सभा से जोड़ने का काम भी सविता और कुक्कु कर रहे थे। अघोघ के मित्र राजेश के कहने पर नँगला और आँखू गाँव के किसान वोट बहिष्कार करते हैं। फिर भी हुकुम सिंह भारी मतों से चुनाव जीत लेते है। किडनी आंदोलन किसान सभा का अगला कदम था। किसान ने अपने किडनी तक बेचकर कृषि को बचाने की कोशिश की। फिर भी उनकी समस्याओं का कोई स्थायी समाधान नहीं निकला। इन चारों युवाओं के प्रयत्नों से प्रभावित होकर कबीर नामक एक पत्रकार समाचार पत्र में नँगला गाँव की खबर को प्राथमिकता देता है।

वर्तमान समय में देश के किसानों को सही दिशा की ज़रूरत है। वे दिशाहीन होकर यहाँ वहाँ भटक रहे है। उन्हें सही रास्ता दिखाने तथा उन्हें सहारा देने की ज़रूरत है। यह युवा पीढ़ी से ही साकार हो पाएगी। मौजूदा जो हालत भारत का है, वह इसी तरह बना रहा तो अगली पीढ़ी किसान बनना पसंद नहीं करेगा। "कितनी आश्चर्य की बात है न कि एक किसान जिसकी आत्मा खेत में ही बसती है उसका बेटा अब उसी खेती से इस हद तक विरक्तहो चुका है। असल में दोष उसका नहीं है। आधुनिकीकरण की चकाचौंध और मॉडर्निज्म ने खेती-किसानी को एक ऐसा व्यवसाय बना दिया गया है जो या ज़मीन जायदाद वाला कोई बहुत अमीर कर सकता, या कोई गरीब जिसकी जीवन-शैली को निम्नस्तर का समझा जाता है।"[11] कृषि बिगड़ने का एकमात्र कारण किसानों के पास धन की कमी नहीं, बल्कि कई ज्वलंत मुद्दे हैं जिनकी नतीजा हम भुगत रहे हैं। "हमने इतिहास को नहीं देखा, इस भूमि की हज़ारों साल की सभ्यता को नहीं समझा, न ही उन तरीकों को समझा जिसने यहाँ की कृषि को सर्वोपरि बनाया था। जिसकी वजह से यहाँ की मिट्टी सोना-हीरे-मोती उगलती थी। हमने बाहर की देखा-देखी काम करना शुरू किया और उसी को सही मानते हुए अपने खुद के तौर-तरीकों को छोड़ दिया।"[12] असल में भूमिपुत्रों की परिस्थिति और मनस्थिति को समझने की ज़रूरत समाज को है।

संदर्भ

1. सल्तनत को सुनो गाँववालो, जयनंदन, लिटिल बुक्स, दिल्ली, 2009,पृ.71
2. वही,पृ.79
3. वही,पृ.85
4. माटीराग, हरियश राय, वाणी प्रकाशन,2024,पृ.209
5. फाँस, संजीव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2015,पृ.165
6. कालीचाट, सुनील चतुर्वेदी, अंतिका प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद, 2015, पृ.37
7. आदिग्राम उपाख्यान, कुणाल सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली,2011,पृ.158
8. वही,पृ.110
9. वही,पृ.9
10. वही,पृ.163-164
11. ओ रे किसान, अंकिता जैन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,2020,पृ.63
12. वही,पृ.68

शोधार्थी, महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम
महात्मा गाँधी विश्वँविद्यालय, कोट्टयम, केरल

आर तंकय्यन अब न रहे...

कर्मठ हिंदी सेवी एवं हिंदी प्रचारक थे आर तंकय्यन जी। वे बालरामपुरम हाईस्कूल के अध्यापक थे। उनका हिंदी अध्यापन 1948 में अमरविला के प्रीता हिंदी विद्यालय की स्थापना से शुरू हुआ था। वे केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम की कार्यकारिणी समिति के सदस्य रहे थे। वे तिरुवनंतपुरम जिला उपभोक्तृ समिति के उपाध्यक्ष भी रहे थे। उनकी पत्नी स्वर्गीय जे एमिली (अध्यापिका) थी। स्वर्गीय प्रीत सुमम टी ई, डॉ प्रीता रमणी टी ई (सेवानिवृत्त असोसियेट प्रोफसर, सरकारी वनिता कॉलेज, तिरुवनंतपुरम), प्रीता राणी टी ई (अकौंट्स ऑफीसर, डी पी ऐ, तिरुवनंतपुरम), सजीव कुमार टी ई (एच एस बालरामपुरम) (31/10/1929- 02/01/2026) संतानें हैं।

रणेंद्र के उपन्यासों में पारिस्थितिक संकटः 'ग्लोबल गाँव के देवता' और 'गायब होता देश' उपन्यासों के संदर्भ में

सजिता एस एस

पर्यावरण अनेक प्राकृतिक तत्वों का समूह है। मनुष्य हो या जीव-जन्तु सभी पर्यावरण की ही उपज है। वास्तव में प्रकृति के दो अति जटिल तत्व हैं- जीव और पर्यावरण। ये अन्योन्याश्रित हैं,परस्पर सम्बन्धित हैं। परिस्थिति विज्ञान या पारिस्थितिकी जीव और पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन मात्र है। वास्तव में एक दर्शन है जिसमें जीव जगत की व्याख्या प्राकृतिक प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में की जाती है। अतः बात तो यह है कि पारिस्थितिकी, जीव और उनके पर्यावरण के बीच पारस्परिक सम्बन्ध है। प्रकृति में प्रत्येक प्राणी एक-दूसरे पर आश्रित है। एक जीव दूसरे का शिकार कर अपनी उदरपूर्ति करता है, प्रकृति का यही नियम है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक जीव किसी न किसी रूप से एक दूसरे पर निर्भर करता है चाहे वह उसका शिकार करता है या शोषण। यदि ऐसा न हो तो प्रकृति का सन्तुलन नष्ट हो जाएगा।

पारिस्थितिकीः अर्थ एवं परिभाषा : पारिस्थितिकी वह विज्ञान है जो प्राकृतिक पर्यावरण के संबंध में जीवों का अध्ययन करता है। इसमें प्राकृतिक पर्यावरण के साथ जीवधारियों की प्रतिक्रियाओं तथा अन्य जीवों के साथ उसकी अन्योन्य क्रियाओं को अध्ययन सम्मिलित होता है। साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि जीवों का अपने भौतिक पर्यावरण के साथ पारस्परिक संबंधों के अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते हैं।

जर्मन वैज्ञानिक हैकल के अनुसार "पारिस्थितिकी प्रकृति की अर्थव्यवस्था से संबंधित ज्ञान है। अर्थात् यह प्राणियों के कार्बनिक एवं अकार्बनिक पर्यावरण के साथ संपूर्ण संबंधों का अध्ययन है। इससे प्राणियों के उन सभी अन्य प्राणियों और वनस्पतियों के साथ, जो उनके संपर्क में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में आते हैं, मैत्रीपूर्ण अथवा शत्रुतापूर्ण संबंधों का भी समावेश है।"[1]

पारिस्थितिकी संकट तथा उसके प्रमुख कारण : पारिस्थितिकी संकट पारिस्थितिकी असंतुलन का परिणाम है। मानवीय गतिविधियों द्वारा अथवा किसी अन्य कारण से जब प्रकृति के किसी एक घटक की मात्रा में अनुपात से अधिक कमी अथवा वृद्धि होती है तो इसके परिणाम स्वरूप प्रकृति के अन्य घटकों का सन्तुलन बिगड़ जाता है। यही असन्तुलन पारिस्थितिकी संकट कहलाता है। पारिस्थितिकी संकट उत्पन्न होने से मानव और प्रकृति के बीच के संबंध समाप्त हो जाते हैं जिससे मानवीय जीवन खतरे में पड़ जाता है। उदाहरण के लिए यदि मनुष्यों की क्षणिक लाभ पूर्ति से वन समाप्त हो जायें तो जलवायू में भीषण परिवर्तन हो जाएगा। इससे सूखा पड़ने लगेगा तथा कृषि भूमि समाप्त हो जाएगी जिससे मरुस्थलों का विकास होगा।

फ्रेडरिक एंगेल्स के अनुसार "हमें प्रकृति पर मानवीय विजय के विपथ में बहुत अधिक प्रशंसा नहीं करनी चाहिए क्योंकि प्रकृति प्रत्येक विजय का भारी बदला लेती है। प्रत्येक विजय, यह तो सही है कि पहली बारी में तो उन्हीं परिणामों को पैदा करती है जिनकी हम आशा करते हैं परंतु दूसरी और तीसरी बारी में ऐसे ऐसे एकदम भिन्न और अप्रत्याशित प्रभावों को पैदा करती है जो कि पहली बार के परिणामों को निरस्त कर देते हैं।"[2] एंगेल्स का यह कथन वर्तमान परिस्थितियों केलिए भी सत्य है क्योंकि विज्ञान व तकनीकी की आधुनिक उपलब्धियों को प्रयोग में लाने से उत्पादन विधि ने वातावरण, आंतरिक जल स्रोतों तथा विश्व के महासागरों को अधिकाधिक प्रदूषित कर दिया है साथ ही भूमि का भारी क्षरण भी किया है।

आज मानव पर्यावरण के ह्रास के इस युग में विचित्र संकट में जी रहे हैं। यह संकट हमने ही खड़ा किया है और इसका वज्रपात भी हम पर ही हो रहा है। प्रकृति के क्षेत्र में हस्तक्षेप के कारण आज स्थल, जल और वायुमंडल में जो असंतुलन हमने पैदा कर लिया है उसके कारण पर्यावरण दूषित हो गया है और औद्योगीकरण, जनसंख्या घनत्व तथा संसाधनों के क्षय के कारण एक ओर प्राकृतिक आपदाएँ-बाढ़, वातचक्र, सूखा, भूचाल, भू स्खलन, मरु

स्थलीय आदि बढ़ गई हैं, दूसरी और भू, जल और वायु का प्रदूषण बढ़ा है।

हमारे आस-पास जो भौतिक पर्यावरण है उसमें जन-समुदाय ताप, वायु-प्रदूषण और जल-प्रदूषण से ग्रस्त है, जिसका भौतिक तत्वों, आवोहवा के परिवर्तनों और मानसिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। जब कभी भूचाल, तूफान, बाढ़ जैसी बर्बादी आती है तो मानव मन उससे उद्धेलित हुए बिना नहीं रहता और उसके भयंकर परिणाम व्यक्तिको जीवन भर ढोना पड़ता है। इस संकट को उसने खुद ही पैदा किया है। इसकी शुरुआत उसने तभी कर दी थी जब वह धरती पर आया, लेकिन वास्तविक लक्षण तब प्रकट हुए जब औद्योगीकरण का श्रीगणेश हुआ। उसके साथ ही एक ऐसी धन-लोलुप उद्योग-व्यापार संस्कृति विकसित हुई कि प्रकृति का अन्धा-धुन्ध दोहन शुरु हुआ। नगरों के बढ़ते जल, वायु, भूमि का शोषण हुआ और कूड़ा, गन्दगी, प्रदूषित गैसों और रासायनों ने जीवन भर हमला बोल दिया।

उपभोक्तावादी समाज की नयी-नयी माँगों का प्रकृति पर यह असर हो रहा है कि वह विनाश की ओर बढ़ रही है और चूँकि उन माँगों की पूर्ति आज बाज़ार के हाथों में है, इसलिए बाज़ार का प्रकृति के विनाश में बड़ा योगदान समझा जा सकता है। उपभोक्तावादी दुनिया में पृथ्वी, चाँद, सूर्य, फूल, पत्ती, पहाड़, नदी आदि प्राकृतिक तत्व अपने वास्तविक रूप-रंग-गंध के साथ नहीं होते, बल्कि उनके कृत्रिम रूप तड़क-भड़क के साथ पेश किये जाते हैं।

अत्याधुनिक तकनीकी के सहयोग से बढ़ते उत्पादनों तथा कारखानों द्वारा पर्यावरण प्रदूषण आज विश्वव्यापी है। करोड़ों की संख्या में कल-कारखाने तथा उनके द्वारा उत्पादित वस्तुएँ वातावरण में विभिन्न ज़हरीली गैसें उत्पन्न करती हैं जो मानव, अन्य जीव-जंतुओं तथा प्रकृति के लिए हानिकारक हैं। उपभोक्तावादी समाज का व्यक्तिप्रकृति की विस्तृत दुनिया से दूर होता है और एक सँकरी दुनिया में सिमट-जाता है। इसी वजह आज कई तरह की पारिस्थितिक संकट से हम उलझ रहे हैं।

रणेंद्र के उपन्यासों में पारिस्थितिक संकट (ग्लोबल गाँव के देवता और गायब होता देश के संदर्भ में)

मानव द्वारा किये गये कार्यों से पारिस्थितिक सन्तुलन में जो अंतर आता है जिससे पृथ्वी में अनेक दोष उत्पन्न हो रहे हैं। यदि समय रहते इनका समाधान न किया गया तो मानव का इस पृथ्वी पर रहना कठिन अवश्य हो जाएगा। इस पारिस्थितिक संकट को दूर करने के लिए सारा विश्व प्रयत्नशील है। विश्व भर के साहित्यकारों ने भी इस भयंकर समस्या को अपने साहित्य का विषय बनाया है। समकालीन हिन्दी साहित्यकारों ने भी इस पारिस्थितिक संकट को चुना है और अपने साहित्य द्वारा इस भयंकर समस्या से मुक्तिचाहा।

हिन्दी के मशहूर कथाकार रणेन्द्र ने इस भीषण समस्या को अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आप अपने उपन्यासों के माध्यम से एक नई ज़मीन ढूँढ़ते है। ग्लोबल गाँव के देवता और गायब होता देश उपन्यासों में उन्होंने नवीनता ही ढूँढ़ी है। उनके उपन्यासों का कथ्य पिछड़े अंचलों की त्रासदी, जनजातीय अभिशप्त जीवन, औद्योगीकरण के तहत होनेवाला विस्थापन, आदिवासी चेतना, लोक जीवन और लोक संस्कृति से जुड़े विभिन्न संदर्भों को उजागर करता है।

आज का सबसे बड़ा संकट भूमण्डलीकरण है, जिससे बड़े देश और बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ शोषण का नया जाल बिछा रही हैं। 'ग्लोबल गाँव के देवता' में वनों पर आश्रित रहने वाले आदिम जन-जातियों को अपने देवता कहने वाले नगरवासियों ने उनका लगातार दोहन-शोषण और उत्पीड़न किया है। सभ्यता और विकास के नाम पर प्रकृति को रौंदा है, साथ ही प्राकृतिक जीवन जीनेवले निरीह प्राकृत मानव -समुदायों के जीवन के साथ हिंसक, बर्बर, अशिष्ट और अश्लील छेड़छाड़ की है। रणेंद्र ने इस उपन्यास में जल, जंगल, ज़मीन की समस्या को बार-बार दोहराया है।

इस उपन्यास के माध्यम से असुर आदिवासियों का जो इतिहास पाठकों के सामने आता है, वह अपने जंगल, ज़मीन और जीवन को आक्रमणकारियों से बचाने के लिए आदिवासियों के कठिन, घातक और कई हज़ार वर्ष लम्बे संघर्ष का इतिहास है । इस उपन्यास का प्रारंभ ही एक असुर मंत्र से होता है, जो मानव और प्रकृति के संबंधों को दर्शाता है और उपन्यास का नायक शिक्षक की नौकरी करने आदिवासी इलाके में आता है। लेकिन जंगल की जो हरी भरी प्रकृति के विरुद्ध लेखक ने जंगल का वर्णन इस प्रकार किया है कि धरती के चेहरे पर जो माँ समान है, खदानों के गड्ढे उसके चेहरे पर धब्बे स्वरूप

दिखाई देते हैं "छिटपुट जंगल, बाकी खाली दूर-दूर तक फैले उजाड़ बंजर-से-खेत। बीच-बीच में बॉक्साइट की खुली खदानें। जहाँ से बॉक्साइट निकाले जा चुके थे। वह गड्ढे भी मुँह बाये पड़े थे, मानो धरती माँ के चेहरे पर चेचक के बड़े-बड़े धब्बे हो।"[3] असुर जनजाति के लोग प्रकृति में अपने देवी-देवताओं का स्वरूप देखते ही हैं - "जैसे हमारे महादनिया महादेव नहीं हैं जो लंगटा बाबा के हैं । हमारी सरना माई न केवल सखुआ गाछ में, बल्कि सारी वनस्पतियों में समाई हैं। हम सारे जीवों से अपने गोत्र को जोड़ते हैं। छोटे-छोटे कीट पतंगों को भी अपने से अलग नहीं समझते। आगे तो यहाँ तक कहते हैं कि हमारे यहाँ 'अन्य' की अवधारणा ही नहीं है।"[4] उक्त उपन्यास में रुमझुम अशोक के द्वारा प्राधानमंत्री को लिखी गई चिट्ठी से प्रकृति के साथ अतीत में ही नहीं बल्कि वर्तमान में भी हो रही छेड़ छाड़ का संकेत तो मिलता ही है, इसके साथ ही साथ आनेवाले भविष्य का भयावह रेखाचित्र भी उभर आता है।

आज जब परिस्थितियाँ निजीकरण की तरफ अधिक आकर्षित हो रही हैं, तब पूरे के पूरे माहौल को एक अलग ही व्यक्तिगत स्वार्थ ने घेर लिया है। ऐसी परिस्थिति में पर्यावरण को बचाने के लिए हो रहे प्रतिरोधों को एक प्रसिद्ध रचनाकार बड़ी संजीदगी और मुखरता से शब्द देना चाहता है। यथा "छत्तीसगढ़ के रायगढ़ जिले से होकर बहने वाली एक बड़ी नदी (शिवनाथ) एक इंडस्ट्री समूह को बेच दी गई थी। उसका निजीकरण हो गया। कई) गाँवों के लोग, मवेशी, चिरई - चुनमुन, खेत बघार सब पानी के लिए छछन रहे थे। बोंदा टिकरा गाँव के लोग राजधानी में जानकर अनशन पर बैठे। सत्यभामा शउरा भी अपने आदमी और बेटों के साथ अनशन पर बैठी । निजाम को लगा कि कोई खाता-पीता आदमी अनशन पर बैठे तो सोचा जाए। जो वैसे भी एक टाइम खाते हैं, एक टाइम को उपासते हैं, उसका अनशन क्या और भूख हड़ताल क्या! नतीजतन ठीक गणतंत्र दिवस के दिन सत्यभामा शउरा की भूख से मौत हो गई। लेकिन हाकिमों को लगा कि गरीबी नियंत्रण का यह भी एक तरीका हो सकता है, जो शिवनाथ नदी के बाद अन्य तीन-चार बड़ी नदियाँ निजी हाथों में सौंप दी गईं।"[5] कहना न होगा कि रणेंद्र ने इस उपन्यास में सिर्फ आदिवासी समाज को लेकर जो भ्रम मुख्य धारा के लोगों में फैले हुए हैं, उनका निराकरण किया बल्कि मूक आदिवासी दुनिया को शब्द भी प्रदान किए। उन्होंने आलोच्य कृति में पूँजीपतियों के द्वारा हो रही खनिज संपदा की लूट और आदिवासी विस्थापन के फलस्वरूप उपजे असंतोष को स्वर दिया है।

'गायब होता देश' उपन्यास को 'ग्लोबल गाँव की देवता' का विस्तृत रूप कह सकते हैं। फर्क इतना है कि 'ग्लोबल गाँव के देवता' जल, जंगल, ज़मीन के नष्ट होने से उपजे शोक का आख्यान है तो 'गायब होता देश' सोना लेकन दिसुम के नष्ट होने से उपजे शोक का आख्यान। किस तरह विकास के नाम पर आदिवासी मुंडा समाज की सभ्यता एवं संस्कृति के साथ उनका अपना आशियाना भी उजाड़ा जा रहा है। विस्थापन के नाम पर कम से कम कीमतों में आदिवासियों की ज़मीन हथिया लेना और उन्हें हमेशा के लिए मुसीबतों में धकेल देना। इस उपन्यास में भी प्रकृति और पर्यावरण की चिंता को दर्शाते हैं कि कैसे एक दिन अचानक एक देश दुनिया के नक्शे से गायब हो जाता है। आदिवासी समाज अपनी भूमि से लगातार बेदखल किए जा रहे हैं। "बाँध परियोजना, विशेष आर्थिक क्षेत्र, रियल इस्टेट, म्यूजियम आदि विकास की आँधी में आदिवासियों का देश उनसे छूट ही नहीं रहा है बल्कि नक्शे से गायब होता जा रहा है।"[6] आदिवासी समाज के महापुरुष जिन्होंने अपने समाज के विकास के लिए कार्पोरेट सेक्टर के लोगों से संघर्ष कर उनके जल,जंगल,ज़मीन को सुरक्षित रखने का कार्य किया उन्हें सत्ता और शोषकों के द्वारा विकास विरोधी बताकर नक्सली भी घोषित कर दिया जाता है। विकास के नाम पर उन्हें जल, जंगल, ज़मीन से बेदखल कर पूँजीपतियों के इशारे पर तैयार की जाने वाली फैक्टरियों को उचित ठहराया जाने लगा। वे उक्त उपन्यास में लिखते हैं- "प्रकृति के प्रति आभार कृतज्ञता है क्योंकि वृक्ष न होते हरियाली ना होती तो प्रकाश संश्लेषण की क्रिया कैसे होती? प्राणवायु कहाँ से आती? जीव-जगत अस्तित्व में कैसे आता? ... सिंगबोंगा की ही कृपा है कि उन्होंने न केवल वनस्पति जगत को पवित्र और पूज्य बनाया बल्कि मरांग बुरु पहाड़ को भी बोंगा देवता के पद से नवाजा है।"[7] इस उपन्यास उपनिवेशवाद के नवसाम्राज्यवादी शोषण के चलते आदिवासियों के मिटते जा रहे भूत-वर्तमान-भविष्य पर केंद्रित है। विकास का ढोल पीटती बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ आदिवासी क्षेत्रों में अपना साम्राज्य खड़ा करती जा रही हैं। झूठे विकास के नाम पर आदिवासियों की ज़मीनों का कार्पोरट द्वारा लूटे जाना और इसी लूट के लिए कार्पोरेट जगत आदिवासियों को उनके मूल से दूर करना चाहता है जिसके लिए विभिन्न प्रकार के उपाय करता है। मुण्डा-कोल आदिवासियों के द्वारा दुलमी बाँध परियोजना का व्यापक

विरोध किया जा रहा था। अमरेन्द्र मिश्र द्वारा परमेश्वर पाहन की हत्या का सारा ठीकरा आदिवासियों पर फोड़ दिया जाता है- "आप ही सोचिए सर कि दुलमी नदी पर दो सौ करोड़ का बाँध। दो सौ करोड़ सर ! यह तो अग्रवाल साहब की ग्रीन कम्पनी की ही औकात थी सर! क्या नहीं है इस प्रोजेक्ट में? बिजली भी, नहर भी, फैक्टरी और खेतों के लिए पानी भी। विकास ही विकास। ये साले कोल्ह कहते हैं, जान देंगे, ज़मीन नहीं देंगे। दे दो जान । अभी तो तीन लोग मरे हैं।"[8] इनकी भूख इतनी ज़्यादा है कि ये आदिवासियों के जंगल, ज़मीन और खनिज को निगल जाना चाह रहे हैं। इस लूट-खसोट में राजनीति और प्रशासन दोनों कैसे मिलकर कार्पोरट का साथ देते हैं, इन दोनों उपन्यासों में साफगोई से दिखाया गया है ।

'ग्लोबल गाँव के देवता' और 'गायब होता देश' उपन्यासों में औद्योगीकरण, नगरीकरण, खनन आदि के फलस्वरूप आदिवासी संकट की समस्या अधिक जटिल और भयंकर बनने का चित्रण किया गया है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' में जल, जंगल, ज़मीन की समस्या को बार-बार दोहराया गया है। उनके ज़मीन से बॉक्साइट निकालने से जो गड्ढा बनती है उसमें पानी भरने और पनपने वाले मच्छरों के कारण वहाँ के लोगों को साल-दर- साल सेरेब्रल मलेरिया होकर काल के ग्रास बन जाता है। बस बचता है तो दबा-छुपा जनाक्रोश- "हमें तो लगता है कि जानबूझकर सरकार भी भटिया रही है। चाहती है, पाट पर आबादी जितनी खत्म हो, बॉक्साइट निकालने में उतनी ही आसानी होगी।"[9]

रणेंद्र के उपन्यासों में आदिवासियों को प्राकृतिक रूप से समृद्ध होने की कीमत अपनी ज़मीन से विस्थापन के रूप में चुकानी पड़ती है। भौतिक समृद्धि की इस पूँजीवादी भूख से प्रकृति का संतुलन बिगड़ता है, वह अलग चिंता का मुद्दा है। उनके उपन्यास में आदिवासियों का जीता-जागता देश ही भूमाफ़ियाओं और खनन माफ़ियाओं के षडयंत्रों और छीना-झपटी में देश के मूल वारिंदे आदिवासियों की आँखों के सामने ही गायब होता जा रहा है। 'सोना लेकन दिसुम' माने सोना जैसा देश गायब होता जा रहा है। इसमें जंगल और आदिवासियों के बीच बने संबंध को दिखाया गया है कि कैसे जंगल इनके जीवन का अभिन्न हिस्सा रहा है। इस 'सोना लेकन दिसुम' का परिवेश और उसे बनाए रखने का संघर्ष 'गायब होता देश' में देखा जा सकता है।

रणेंद्र के इन दोनों उपन्यासों में विकास के नाम पर विस्थापन और आदिवासियों का शोषण ही अधिक देखते हैं। औद्योगीकरण के दुष्परिणामों से आदिवासी पूरी तरह से प्रभावित है। उनके उपन्यासों का आधारशिला ही पारिस्थितिक अवबोध है। यह भी नहीं औद्योगीकरण के नाम पर होने वाले वायु और पानी का प्रदूषण, प्रकृति का सर्वनाश आदि का चित्रण अधिक हुआ है। रणेंद्र इक्कीसवीं सदी के चर्चित साहित्यकार के रूप में विख्यात है। जिन्होंने अपने उपन्यासों में पारिस्थितिक संकट के मुद्दों को उजागर किया है।

निष्कर्ष : रणेंद्र के दोनों उपन्यासों में आदिवासी प्रकृति, जीवन, समाज और उनके संकट की पहचान करने वाले साहित्य की कड़ी है। आज की विकास नीतियाँ प्रगति और प्रकृति के बीच विरोधात्मक स्थिति पैदा कर रही हैं और आदिवासियों की ज़िन्दगी दूभर बना रही हैं, ऐसी जटिल स्थिति में हमें प्रकृति और औद्योगीकरण में तादात्म्य स्थापित कर विकास की ओर अग्रसर होना है। दोनों उपन्यासों में विकास परियोजनाओं के परिणाम स्वरूप उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं का जीवंत चित्र उपस्थित कर यह बताना चाहते हैं कि हमें प्रगति का सहारा तो अवश्य चाहिए। लेकिन इसके लिए प्राकृतिक संपदाओं का बड़े पैमाने पर उपभोग एक भारी चूक होगा। इसी के साथ उपन्यासकार मानव समाज की बेहतरी के लिए, आगामी पीढ़ी के उज्ज्वल भविष्य के लिए प्राकृतिक संसाधनों के उपभोग में सावधानी बरतने की चेतावनी भी देते हैं। दोनों उपन्यासों में पर्यावरणीय समस्याओं को जीवंत अभिव्यक्ति प्रदान कर प्रकृति और पर्यावरण की अहमियत को पाठकों को आगाह कराने का सार्थक प्रयास किया गया है।

संदर्भ

1. डॉ पी. एस. नेगी- पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण भूगोल, पृ.4
2. वही, पृ.128
3. रणेंद्र- ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.9
4. वही, पृ.72
5. वही, पृ.91
6. सं. शर्मा, डॉ.सत्यपाल, मीणा, टीकम चन्द्र, आदिवासी जीवन संस्कृत, संघर्ष और हिन्दी साहित्य, पृ.124
7. रणेंद्र, गायब होता देश, पृ.2
8. रणेंद्र, गायब होता देश, पृ. सं.40-41
9. रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, पृ. सं.14

शोधार्थी, हिंदी विभाग, सरकारी वनिता कॉलेज
वषुतक्काड़, तिरुवनन्तपुरम

स्थायित्व की खोज में नियोजित शिक्षकों का जीवन

ज्योत्स्ना राठौड़

भारत को प्राचीनकाल से ही प्रभावी शिक्षा पद्धति के कारण विश्वगुरू की संज्ञा प्रदान की गई है। प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र के विकास हेतु अच्छे नागरिकों का निर्माण करना था। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में गुरू उनके आदर्श होते थे। भारतीय शिक्षा प्रणाली की बात करें तो प्राचीन समय में गुरू शब्द को श्रेणियों में विभाजित न करके एक ही अर्थ के संदर्भ में सम्मानपूर्वक समझा जाता था। इसी को कुमार विक्रमादित्य ने अपने उपन्यास 'मास्टरबा' में दिखाने का प्रयास किया है। सम्पूर्ण उपन्यास में लेखक ने शिक्षण संस्थाओं और शिक्षा तथा शिक्षकों में समय के अतंराल में आने वाले बदलावों को दिखाने का प्रयास किया है। समय के अन्तराल के साथ गुरू शब्द भी कई श्रेणियों में बंट गया। वर्तमान में शिक्षकों के दो वर्ग नियमित और नियोजित शिक्षक हो गए हैं। यही श्रेणियाँ भारतीय शिक्षा व्यवस्था का यथार्थ बनकर रह गई है। जहां एक तरफ तो गुरू के पढ़ाने के तरीकों को ध्यान में नहीं रखकर सिर्फ उनके पद और तनख्वाह को ही उनकी प्रतिष्ठा का आधार बनाया जाता है। वहीं दूसरी तरफ ईमानदार शिक्षक 'कुंदन बाबू' जो धन लोलुप न होकर एक शिक्षित व संस्कारवान पीढ़ी बनाने के लिए भ्रष्ट तंत्र से लड़ते हुए ईमानदारी को अपना साथी बना लेते हैं। लेकिन फिर भी उन्हें स्थाई व नियोजित शिक्षक के पलड़े से तोला जाता है।

शिक्षण संस्थाओं में नियमित व नियोजित शिक्षकों की श्रेणियाँ बनने के कारण शिक्षा का स्तर कम हुआ है। नियोजित शिक्षक जब इस व्यवस्था को सुधारने की कोशिश करते हैं तो तथाकथित समाज की ओछी मानसिकता व उनके प्रति नकारात्मक रवैये के कारण उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। 'मास्टरबा' उपन्यास में इसी परंपरा के वर्तमान यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने नियमित और नियोजित शिक्षकों की स्थिति के बारे में बताया है कि समाज भी उन्हें उनकी योग्यता के मुताबिक नहीं बल्कि पद के मुताबिक अहमियत देता है। उपन्यास की भूमिका में कुमार विक्रमादित्य लिखते हैं कि "यह पुस्तक उन सभी शिक्षकों को समर्पित है जो अर्थाभाव में रहकर भी समाज के कोने-कोने में शिक्षा की अलख जगाने का प्रयास कर रहे हैं।" उक्तकथन विचारणीय होने के साथ-साथ उपन्यास के लिए सटीक बैठता है।

इस विद्यालय में एक स्थायी शिक्षक है जिनका पढ़ाने से कम और अन्य कार्यों से अधिक वास्ता है। साक्षात्कार की प्रक्रिया में जान-पहचान के माध्यम से शिक्षक के पद पर नियुक्त तो हो गए पर विषय के ज्ञान के नाम पर इनके पास कुछ नहीं है। दूसरी तरफ नियोजित शिक्षक हैं जिनके पास विषय का ज्ञान तो खूब है परन्तु उन्हें शिक्षक के रूप में सम्मान नहीं मिल रहा। स्थाई शिक्षक उनके बारे में भला-बुरा कहने का कोई मौका नहीं छोड़ते हैं। भारतीय शिक्षा प्रणाली में यह कोई नई बात नहीं है आज भी बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों में ऐसे ही शिक्षकों की नियुक्तियाँ होती हैं "जो बेवजह व्याख्यान देने में बहुत विशेषज्ञ हैं । हर समय दूसरों को उनके कर्तव्य याद दिलाते रहते हैं लेकिन खुद सिर्फ अधिकारों का उपभोग करते हैं। यदि उन्हें कोई अतिरिक्त पद मिल जाता है तो वे उसमें व्यस्तता का बहाना बनाकर समय जाया करते रहते हैं । उनके लिए पढ़ाना तो द्वितीयक कार्य बनकर रह जाता है। "प्रधान जी ने आज तक कभी वर्ग में पढ़ाया नहीं है क्या? और वह क्या पढ़ाते हैं यह तो सबको पता ही है । हाथ में किताब लेते हैं और बच्चों को डांटना शुरू कर देते हैं फिर दस बार गधा-कुत्ता बोलते हैं फिर सभी शिक्षकों की शिकायत करते हैं; यही तो हम सब ने उन्हें करते देखा है । क्या बोलो मैं सही कह रहा हूँ या गलत? सबने कहा बात तो सही है।"[1]

एक शिक्षक जब भ्रष्ट व्यवस्था से जुड़ता है तो वह सम्पूर्ण विद्यालय को दूषित करने में ही रहते हैं । उनका सारा ध्यान ऊपरी कमाई पर रहता है । वही दूसरी तरफ नियोजित शिक्षक अपना काम समय पर जिम्मेदारी पूर्वक करते हैं । हमारे देश में यह अव्यवस्था आज भी विद्यमान है कि जो स्थाई शिक्षक नहीं हैं उनको अपनी नौकरी छूटने का डर रहता है या उनमें कुंदन सर की तरह थोड़ी ईमानदारी बची है और प्रधानजी आज भी पैर तक जेबी की पैंट पहनते हैं जिस जेबी में न जाने कितने गरीब मजदूरों की मेहनत,

किसी का घर खर्च या किसी की पुस्तकों के लिए जोड़े पैसे समा जाते हैं और प्रशासन को कानों-कान खबर भी नहीं मिलती है। नियोजित शिक्षकों पर अपनी नौकरी की अनिश्चितता को लेकर दबाव रहता है। भले ही वह अपने विषय को पढ़ाने में विशेषज्ञ रहते हैं। कार्यस्थल पर व्यंग्य और उत्पीड़न को सहना उनकी मजबूरी बन जाती है। "सामान्य वेतन के स्थान पर अनिश्चितता की तलवार के नीचे काम करने वाले इन शिक्षाकर्मी/गुरुजी/मानद शिक्षक-शिक्षा सहायक के पदनाम से जाने जाने वाले यह 'अध्यापक' उत्तरदायित्व के नाम पर वह सब स्वीकार करने को बाध्य हैं जो नियमित अध्यापकों से अपेक्षित हैं।"[2]

उपन्यास में बताया गया है कि मास्टर व शिक्षक शब्द की खाई इतनी बढ़ गई है कि एक विद्यार्थी 'आनंद' द्वारा मास्टर और शिक्षक में अंतर पूछने पर शिक्षक द्वारा पिटाई की जाती है तो मास्टर व शिक्षक शब्द को लेकर विद्यालय में बहस चल पड़ती है। लेखक ने इस माध्यम से बताया है कि शिक्षा में नियोजित शिक्षकों के पद को इतना छोटा बना दिया गया है कि वे अपने आप को इस संबोधन मात्र से ही हीन महसूस करने लगते हैं। "तभी विनय बाबू ने कहा-माफ करेंगे श्रीमान, आप 'मास्टर' को जो भी समझें पर हकीकत में यह एक गाली है। मुझे तो यह ऐसा ही भाव महसूस कराता है जैसे कि हरिजन कहने पर अनुसूचित जाति और जनजाति बिदकती है।"[3]

इस उपन्यास में दिखाया है कि सरकारी व प्राइवेट शिक्षकों की तुलना की जाए तो हम पाते हैं कि सरकारी शिक्षक को उतना मान-सम्मान नहीं मिल पाता है जितना कि निजी शिक्षण संस्थान में अध्ययन करवाने वाले शिक्षकों को मिलता है। इसका कारण कहीं-न-कहीं सरकारी विद्यालयों में शिक्षकों की कर्तव्यहीनता, शैक्षिक शिथिलता है। वही निजी शिक्षण संस्थानों में फीस के रूप में मोटी रकम वसूली जाती है तो उसी आधार पर अध्ययन भी करवाया जाता है। निजी संस्थाओं में स्थाई व नियोजित की कोई दौड़ नहीं होती है । वे 'सर' के नाम से संबोधित किये जाते हैं। "भाई वहाँ के शिक्षक को न तो शिक्षक न मास्टर से ही कोई परहेज़ है, उसे तो सर से संबोधन होता है और बच्चों के दिलों में वह रोल मॉडल की तरह बैठे रहते हैं अभिभावक के दिल में उनके लिए अच्छा स्थान होता है, आखिर उसे महीने-महीने फ़ीस जो भरने होते हैं यह वास्तविक बात है जब आप कोई सामान खरीदते हैं और आपको पैसे देने पड़ते हैं तो आप उस चीज को कई बार देखते हैं, परखते हैं, अपनी कसौटी पर तौलने की चेष्टा करते हैं और अपने यहाँ क्या?"[4]

विद्यालय में जो स्थाई शिक्षक हैं उनको पदोन्नति की लालसा रहती है वे किसी भी तरह से शिक्षक से पदाधिकारी बनने की लालसा रखते हैं। वहीं पर नियोजित शिक्षकों की तरफ सरकार का ध्यान ही नहीं जाता कि उन्हें भी एक समय-सीमा के बाद स्थाई बनाना चाहिए। उपन्यास में दिखाया गया है कि स्थाई शिक्षक सरकार से जिस काम का पैसा ले रहे हैं उसे करने की बजाय वे अपना अधिक समय चाटुकारिता में व्यतीत करते हैं। "ऐसे ही एक व्यक्ति थे पाठक जी, जिन्होंने अपनी पूरी जिन्दगी कार्मिक 'कोषांग' को चुनाव के लिए दे दी; शिक्षक रहते भी कभी वर्ग का मुँह नहीं देखा । अब भला आप सोच सकते हैं कि उनके विद्यालय के बच्चे उनकी घंटी में क्या करते होंगे। यही सच है और यह केवल एक पाठक जी का नहीं है, उन सभी पाठक जी का है जो प्रतिनियोजन के नाम पर उन बच्चों का भविष्य खराब करते हैं जो इस उम्मीद के साथ विद्यालय जाता है कि हमें विद्या के मंदिर में प्रसाद अवश्य मिलेगा।"[5]

नियोजित शिक्षकों के साथ विद्यालय की दिन-चर्या में भी भेदभाव किया जाता है। जैसे सरकारी बैठक में नियोजित शिक्षकों को चाय-नाश्ता नहीं दिया जाता है, क्योंकि वे नियोजित हैं न कि नियमित। शिक्षा के क्षेत्र में यह विडंबना है कि कार्यभार दोनों श्रेणियों में बराबर का है। ऐसे छोट-छोटे कार्यों से उनका मनोबल टूटता है। सर गिना हुआ ही होगा, आप खाइए न, वैसे भी नियोजित शिक्षक हूँ न सर उसके लिए थोड़े कभी कोई नाश्ता आता है। सर आप खाइये न हम लोग अपना पानी अवश्य आपको पिलायेंगे। अपना पानी का क्या मतलब? सर हम सभी नियोजित शिक्षक लोग पीने का पानी बाहर से मँगवाते हैं। सभी के महीने में पचास रुपये लगते हैं पर सभी लोग निश्चिंत रहते हैं । प्रधान जी वो पानी नहीं पीते हैं क्योंकि उन्हें पचास रुपया देना पड़ेगा न । हाँ वो अलग बात है कि इधर-उधर देखकर अगर नज़र से बच जायें तो कभी-कभार हाथ मार लेते हैं। अगर किसी ने देख लिया तो कहते हैं, "पानी ही न लिये हैं।" हम लोग भी हँसकर उन्हें पानी पिला देते हैं।"[6]

सत्ता में बैठे नेता आज तक इन मुद्दों को हर चुनाव में अपने तरीके से भुनाते नजर आए हैं। देशभर में जब भी नियोजित शिक्षक नियमित होने की माँग करते हैं तो उन हड़तालों, प्रदर्शनों, कोर्ट की सुनवाइयों; इन सबके बीच में राजनीतिक पार्टियाँ अपनी रोटियाँ सेंकने लगती हैं। जब वे नियमित से ज्यादा कार्य करते हैं तो उनको वेतन और इज्जत उनके बराबर क्यों नहीं दी जाती? शिक्षा के बिना देश का कोई भविष्य नहीं हो सकता है। जहाँ चीन, जापान और दक्षिण कोरिया जैसे देशों ने शिक्षा पर बहुत अधिक खर्च किया, वहीं हम आज तक उचित बजट की बाट जोह रहे हैं। अनुसंधान एवं विकास पर भारत का खर्च सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 0.6 प्रतिशत है और विश्व औसत 1.8 प्रतिशत से काफी नीचे है । इसमें निजी क्षेत्र का योगदान उनके सकल व्यय का 40 प्रतिशत से कम है, जबकि उन्नत देशों में यह आंकड़ा 75 प्रतिशत से अधिक है। यह अच्छी बात है कि केंद्र सरकार इससे उबरने के लिए नवीन पहल कर रही है । डिजिटल विश्वविद्यालय और गति शक्तिविश्वविद्यालय ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था की रीढ़ बनने जा रहे हैं। इन नए प्रयासों के चलते ही विश्व बौद्धिक संपदा संगठन द्वारा जारी ग्लोबल इनोवेशन इंडेक्स, 2023 में भारत 132 देशों की सूची में 40वें स्थान पर आया है। 2015 में यह 81वें स्थान पर था, जो एक बड़ा सुधार है। इन उपलब्धियों के साथ ही देश की शिक्षा के समक्ष कुछ अन्य चुनौतियां भी हैं, जिनका समाधान किया जाना समय की मांग है।"[7]

उपन्यास में दिखाया है कि बिना उचित शिक्षा के एक भीड़ की मानसिकता को किस प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है। उस भीड़ में शामिल होने वाले बच्चों की नींव हमें अच्छी बनानी होगी । लेखक ने यथार्थ स्थिति से परिचित करवाया है कि हमारे देश में भीड़तंत्र के द्वारा किये गये गुनाहों की लंबी लिस्ट है जिनकी न कोई सजा है न कोई अपराध सिद्ध होता है। कुंदन सर का भीड़ को संबोधन करना वास्तविक परिस्थितियों को उजागर करता है । कहते हैं कि भीड़ का कोई चेहरा नहीं होता वह कुछ भी कर सकती है। "एक विनती है आप लोगों से कि अपने साथ अपने बच्चों को इसका हिस्सा मत बनाइये। अरे मैंने तो कोशिश की थी कि शिक्षा दान कर आपको इस काबिल बना दूँ कि आप सही-गलत में फर्क कर सकें। आप अपने साथ-साथ अपने भविष्य की चिंता करें।"[8] कुंदन बाबू का यह संबोधन हमें यह याद दिलाता है कि शिक्षा को हम कभी भी नियोजित या नियमित में नहीं बाँट सकते हैं। इसके लिए ज्ञान देने वाले का मन और प्राप्त करने वाले की मंशा महत्वपूर्ण होती है न कि शिक्षक के पद का स्थायित्व मायने रखता है।

उपन्यास में दिखाया गया है कि कुंदन सर नियोजित शिक्षक हैं लेकिन वे अपनी ईमानदारी और पढ़ाने के प्रति कर्तव्य परायणता के कारण आनंद जैसे होनहार विद्यार्थियों की पौध तैयार कर पाते हैं। जो शिक्षकों को नियमित, नियोजित से परे ईमानदार के रूप में देखते हैं। हमारे समाज में आज भी शिक्षकों के पद के हिसाब से लोगों के दिमाग में धारणा बनी है, जिसे आनंद जैसे विद्यार्थी तोड़ते नजर आते हैं। आप उसे जिस नाम से पुकारें आप उसे 'नियोजन' मास्टर कहें या 'नवका मास्टर' कहें या कुछ और मेरे लिए वही सब कुछ है मेरे देवता से भी बढ़कर है। और आपने तो सुना होगा न कि "गुरु, गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाँव" तो कान खोलकर सुन लीजिये मैं तो अपने शिक्षक को ही प्रणाम करूँगा, भले आप कितना भी उपहास क्यों न कर लें । कुछ देर के लिए सभी चुप हो गए पर बीच में कोई बोल पड़ा- "अरे देखो नवका मास्टर सब बच्चा के दिमाग़ में कितना कचरा भर दिया है कि उसे सही-ग़लत की पहचान भी करना नहीं आता।"[9]

हमारे समाज में व्यक्ति की पहचान उसके कर्म की बजाय उसके पैसों से की जाती है । यही इस उपन्यास में दिखाया गया है कि जब एक नियोजित मास्टर को उसी तनख्वाह में किसी विद्यालय का प्रधान नियुक्तकरती है तो वहाँ भी वह अपना काम ईमानदारी से करता है, उसी ईमानदारी के बदले में उसे 'नवका', 'नियोजित', 'बकरचरवा', 'मास्टरबा' जैसे वाक्यों से सुशोभित किया जाता है। इस उपन्यास के अंत में कुंदन बाबू को प्रधानाध्यापक की बैठक में अनुपस्थित रहने के कारण निलंबन व कारण बताओ नोटिस जारी किया गया जिसे कुंदन बाबू अपनी ईमानदारी का परिणाम मानकर नौकरी से स्थाई बर्खास्तगी चाहते हैं। लेकिन उनकी ईमानदारी का बीज आनंद के रूप में प्रशासनिक अधिकारी के पद पर पहुँचने के रूप में पेड़ बन चुका था। आनंद नियमित और नियोजित शिक्षक के भेद के परे एक ईमानदार शिक्षक के रूप में कुंदन बाबू का आदर-सत्कार करता है।

हम कह सकते हैं कि उपन्यास में नियोजित व नियमित शिक्षकों के बीच इस मतभेद का सबसे ज्यादा नुकसान छात्रों का होता है । नियमित शिक्षक स्थायित्व के अहं के कारण इर्द-गिर्द के मामलों में ही उलझकर रह जाते हैं तो वही कुंदन बाबू जैसे नियोजित शिक्षक अपनी ईमानदारी से या कुछ नौकरी खोने के डर से कम से कम पढ़ाते तो हैं। उपन्यास के अंत में प्रधानाध्यापक के द्वारा उन्हें बर्खास्तगी का नोटिस देना; नियोजित शिक्षकों के भविष्य को गर्त में धकेलने जैसा है। उपन्यास में लेखक ने यह दिखाने की कोशिश की है कि छात्रों को ईमानदारी व कर्तव्यनिष्ठा से पढ़ाया हुआ, प्रेरणा के रूप में कार्य करता है; नियमित व नियोजित शिक्षकों का पद बच्चों के लिए महत्त्व नहीं रखता है । शिक्षक का सम्मान उसके स्थायित्व या अस्थायित्व के आधार पर न होकर उनके ईमानदारी से करवाये गये शिक्षण के आधार पर होना चाहिए । लेखक ने यह संदेश दिया है कि भविष्य में भी कुंदन बाबू जैसे शिक्षक आनंद जैसे हीरे को तराशेंगे जिसके कारण ईमानदारी की लौ समाज में हमेशा जाग्रत रहेगी। सरकार को भी नियोजित शिक्षकों को स्थाई करने हेतु कुछ प्रावधान करना चाहिए ताकि भविष्य में किसी भी कुंदन बाबू को बेवजह अपमान की पीड़ा से न गुजरना पड़े तथा इन जैसे शिक्षकों को स्थायित्व मिलेगा तभी शिक्षा का समान वितरण हो पायेगा।

सन्दर्भ सूचीः

1. कुमार, विक्रमादित्य; मास्टरबा; अंजुमन प्रकाशन, उत्तर प्रदेश; प्रथम संस्करण: 2021;पृ. 84
2. राजपूत, सिंह जगमोहन; शिक्षा की गतिशीलता अवरोध, नवाचार एवं संभावनाएं; संस्करण: 2016; पृ. 47
3. पृ. 26
4. पृ. 28
5. पृ. 69
6. पृ. 117
7. https://search.app x9qby Dme1N4c DQhJ7 दिनांक 28 फरवरी 2025 समय 4:24 पूर्वाहन
8. पृ. 187
9. पृ.36

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़

कविता

क्यों है?

सरस्वति अम्मा

सुंदर रूपाभ जिनमें
विरूप-सा भाव क्यों है?
सुस्वर मधुर जिनमें
रूप विकल शब्द क्यों है?
स्वार्थ हेतु पितरों को
बुढ़ापे में छोड़ते क्यों है?
ज्ञान प्राप्त करते हम फिर
गुरु-निंदा करते क्यों है?
विद्या-प्रदायिनी विद्यापीठों को
कलुषित-सा करते क्यों है?
आनंदित होने के मार्ग अनेक
फिर भी ढूँढते नशा क्यों है?
पवित्र जलस्रोतों को वृथा
मलिन करते क्यों है?
ईश्वर प्रदत्त सुंदर प्रकृति को
ज़हरीला करते क्यों है?
प्रकृति के अनुकूल पहाड़ों-पेड़ों को
तहस-नहस करते क्यों है?
मनः शांति प्रदायिनी देवालयों को
बाँटते रहते क्यों है?
ईश्वर रूप सुसंतानों का
अनुचित पालन करते क्यों है?
इनपर खोजेंगे उत्तर तो
सब कुछ ठिकाने पर आ जाएगा।

अनुवाद : डॉ रंजीत रविशैलम

गोविंद मिश्र के यात्रा साहित्य में केरल

जोस्मिन जोस

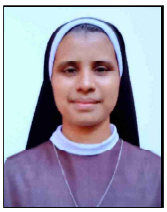

शोधसार - अनुभवों की समृद्धि मनुष्य की रचनाशील मानस को अभिव्यक्ति करने की प्रेरणा देती है। यात्रा के दौरान प्राप्त अनुभवों को भी उसकी सृजनात्मक प्रतीभा ने शब्द-बद्ध करने का प्रयास किया और यही प्रयास यात्रा-साहित्य के रूप में प्रतिबिंबित हुआ। हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ लेखक गोविन्द मिश्र अपने घुमक्कड़ वृत्ति से प्राप्त अनुभूतियों का आस्वादन पाठकों को देने की इच्छा से यात्रा-साहित्य का सृजन करते है। मिश्रजी के केरल यात्रा व प्रकृति के प्रति उनके प्रेम के बारे में अपने यात्रा साहित्य में लिखते है। इस लेख में उसपर प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्दः केरल, यात्रा साहित्य, प्राकृतिक सौन्दर्य, मानव और प्रकृति, नदी और झील

मनुष्य के अंतर मन में हमेशा से प्रकृति के अपरिचित स्थानों व अज्ञात रहस्यों को जानने की इच्छा रही है। मनुष्य की प्रकृति नित नवीन स्थान देखने और अपने सामाजिक संपर्कों को विकसित करने की रही है। जब लेखक अपनी यात्राओं के दौरान अपनी आंखिन देखी को लेखनीबद्ध करता है तब वह यात्रा साहित्य बन जाता है। यात्रा साहित्य में देश-विदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य, संस्कृति, कला, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक जीवन, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि की झलक प्रस्तुत की जाती है।

यात्रा-साहित्य के पथ पर : हिन्दी साहित्य में यात्रा-साहित्य की परंपरा का सूत्रपात भले ही आधुनिक युग में हुआ है, लेकिन यात्रा की परंपरा अत्यंत प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति का अभिन्न भाग रहा है। गद्य साहित्य की अन्य विधाओं के समान ही यात्रा साहित्य की परंपरा का सूत्रपात भारतेंदू युग से आरम्भ हुआ। लेकिन इस विधा का पनप छायावादी युग में हुआ। इस युग में यात्रा-साहित्य को दिशा और विशिष्ट पहचान देनेवाले साहित्यकार है - राहुल सांकृत्यायन एवं सत्यदेव परिव्राजक। हिन्दी यात्रा साहित्य के युग पुरुष राहुल सांकृत्यायन के रचना कर्म से छायावादोत्तर युग सतत् गतिशील रहा। अज्ञेय, यशपाल, धर्मवीर भारती, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश जैसे साहित्यकारों ने भी अपनी यात्रागत अनुभूतियों को शब्दबद्ध किया।

साहित्यिक विधाओं के विकास के साथ-साथ उनकी प्रकृति और स्वरूप में भी कई परिवर्तन आ रहे हैं। समकालीन यात्रा सहित्य में भी यह परिवर्तन आ चुका है। तथ्यात्मकता के आधार को तोड़कर, आज संवेदनात्मक अनुभूति यात्रा साहित्य का आधार बन गया। यात्रा के बहाने अपने परिवेश से बाहर निकल कर लेखक दूसरे परिवेश से मिलकर अपने विचारों, अनुभवों या चिन्तन आदि की अभिव्यक्तियात्रा-साहित्य में करते है। दूसरे शब्द में कहते है तो आँखों से देखकर,दिल से अनुभूति पाकर यथार्थ को समकालीन यात्रा साहित्यकार उद्घाटित करते हैं। गोविन्द मिश्र, रामदरश मिश्र, प्रदीप पंत, इन्दु जैन,अज़गर वजाहत आदि समकालीन यात्रा साहित्यकार हैं।

हिन्दी साहित्य जगत में कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित गोविन्द मिश्र यात्रा-साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षरों में से एक है। उनके यात्रा-संस्मरण गहरी संवेदना से उपजी अनुभूतियों को देश और काल के यथार्थ से जोड़कर कलात्मक रूप में प्रस्तुति देते है। उनके लिए यात्रा जीवन के दूसरे अनुभवों से थोडे अलग किस्म का अनुभव है, जो

दूरी रखते हुए भी पास लाती है, जिसमें व्यक्तिअपने गोल (goal) से बाहर निकल कर संसार की व्यापकता को छू सकता है। स्वयं से थोडा वैराग्य और बाहर से जुड़ना यात्रा में ही संभव है।

प्रकृति प्रेमी : यात्रा-साहित्य के महत्वपूर्ण एक तत्व है विषयवस्तु। यह यात्री के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। गोविन्द मिश्र ने अपने यात्रा साहित्य में प्रकृति चित्रण को महत्व देते हुए प्रकृति को विषयवस्तु के रूप में चुना। प्रकृति के संसर्ग को अपनी रूहानी जरूरत मानने वाले मिश्रजी के लिए प्रकृति का फैलाव इतना आकर्षक है कि उन्हें लगता है प्रकृति के अतिरिक्तजो है वह सचमुच अतिरिक्त है। उनके यात्रा साहित्य प्रकृति के खुले सौन्दर्य का साक्षात्कार है। भारतीय प्राकृतिक सौन्दर्य की झलक है मिश्रजी का 'झूलती जडें' नामक यात्रा-साहित्य संकलन। इसमें भारत के कई जगह -बस्तर के आदिवासी इलाकों, अंडमान-निकोबार द्वीप समूहों, राजस्थान के गढों, सतपुडा के घने जंगलों, केरल के सगर तटों और पूर्वांचल के विविध अंचल का वर्णन है। उक्त संकलन में दक्षिण भारत की एक छोटा सा राज्य केरल-जिसे भगवान की अपनी भूमि (Gods Own Country) के रूप में जाना जाता है, उसके सौंदर्य को 'पेरियार के साथ-साथ' नामक लेख में बयाँ करते है। इस यात्रा साहित्य में मिश्रजी ने केरल के सबसे लंबी नदी परियार का इस तरह से वर्णन किया है कि हमें लगता है कि हम भी परियार के साथ साथ यात्रा कर रहे हैं। केरल के बारे में इनकी राय है कि "केरल भूमि के चप्पे- चप्पे का उपयोग, शिक्षा और स्वच्छता में भारत में सबसे ऊपर बैठेगा।"[1] केरल की खूबसूरती पर्यटकों को यहाँ की ओर आकर्षित करती है।

प्रकृति और मानव : केरल की खूबसूरती के कारण सिर्फ यहाँ की प्राकृतिक सौन्दर्य नहीं, प्रकृति से जुडे मानव भी है। मनुष्य प्रकृति का ही एक हिस्सा है। प्राकृति से अलग होकर मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं। प्राकृतिक सौन्दर्य की पूर्णता मानव जाति के बिना अधूरा है। इसलिए कुमरकम(एक जगह) में मनुष्य और प्रकृति के बीच की ताल-मेल देखकर लेखक यह बात को ज़ोर देता है कि - "कुमरकम अब तक की सबसे खूबसूरत जगह है। प्राकृतिक खूबसूरती तो यहाँ से भी ज्यादा दूसरी जगहों पर देखने को मिली थी... फिर यहीं एक आलोक सा मन आत्मा पर बिछता महसूस हुआ। क्योंकि यहाँ प्रकृति की सुन्दरता के साथ-साथ जिन्दगी की चहल पहल भी थी। प्राकृतिक सौंन्दर्य अपने आप में भव्य होता है, विराटता और शांति की प्रतीती कराता है...पर सौंन्दर्य जो पूरी तरह डूबो ले यह वही होगा जहाँ प्रकृति के साथ-साथ मनुष्य भी मौजूद हो।"[2]

प्रकृति को आत्मसात करके जीनेवाले मिश्रजी ने मून्नार के भव्य दृश्य को इस तरीके से दर्शाया है कि जैसे वह हमारे आँखों के सामने हो रहे हैं। दूसरों से सुनी हुई मून्नार के मनोरम दृश्य को अपनी आँखों से देखते वक्त उन्हें पता चला कि जो बात उन्होंने सुनी थी वह बिल्कुल सच है। मून्नार के कोहरे को एक साथी के रूप में देखकर वे कहते हैं कि "यहाँ वह था, मेरे एकदम पास, मैं उसे छू सकता था। ज्यों-ज्यों उस खोह से फूटता उजाला बढ़ता गया, कोहरा दूसरी तरह जाता रहा, आखिर चला गया जैसे एक साथी आया, साथ बैठा और फिर उठकर चल दिया।"[3]

प्राकृतिक सौन्दर्य में डूबकर प्रकृति के संगीत का आनंद लेने वाले लेखक प्रकृति के बीच रहते हुए भी पश्चिमी संगीत में भटकनेवालों की आलोचना करके आज के मनुष्य की संकुचित मानसिकता को स्पष्ट करते है कि "बरसात की टिप-टिप जैसी आवाज़ होती थी...संगीत! कितने देर मैं घने पेडों के नीचे पगडंडियों पर इधर-उधर घूमता रहा। लौटकर आया तो जहाँ टुरिस्ट कॉपरिशन के स्टफ-क्वार्टर्स थे, वहाँ बज रहा था पॉप म्युज़कि...भॉय-भॉय! कोफ़्त हुई कि ऐसे जंगल में रहते हुए भी हमारे लोग

प्रकृति के संगीत को नहीं सुन पाते,उन्हें तो चाहिए विदेशी..."[4]

सिर्फ केरल में : जब लेखक ने चंङ्ङनाश्शेरी से अल्लपी यात्रा के दौरान बैकवाटर्स में छोटी नाव जिसे केरल में 'वल्लम' कहते हैं उस पर आधे घंटे सैर किया तब वे कश्मीर की झील से केरल के बैकवाटर्स की तुलना करके कहते हैं कि- "कश्मीर में बनावटी ज्यादा है लेकिन केरल में सब कुछ प्राकृतिक है।"[5] दूसऱ्द्ध जगह में मिश्रजी केरल की जनता की आत्मसंतृप्ति भरे जीवन शैली को देखकर स्पष्ट करते है कि- "वह जानलेवा गरीबी जो हिंदुस्तान में दूसरी जगह पर दिखाई देती है, केरल में नहीं दिखती।"[6]

वेम्बनाड झील केरल की सबसे बडी झील है,कई क्षेत्रों में फैली हुई इसे केरल के विभिन्न भागों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। जब झील अल्लपी-कुट्टनाड पहुँचती है,तो इसे पुन्नमडा झील कहा जाता है। केरल की सुप्रसिद्ध नेहरु ट्रॉफी बोट रेस इस बैकवाटर्स में होती है। मिश्रजी केरल के पुन्नमडा कायल और वहाँ चलने वाले बोट रेस का छोटा सा विवरण देता है- "थोडी दूर तक पानी के दोनों तरफ अल्लपी बस्ती की झलकें...और फिर एकाएक हमारी नाव लंबे-चौड़े जलाशय में आ गई...पुन्नमुडा कायल-काफी दूर तक जाती हुई,सीधी पानी की सड़क जैसी,लंबी और चौड़ी।यहां केरल की सुप्रसिद्ध नेहरू बोट रेस हर अगस्त के दूसरे शनिवार को आयोजित की जाती है। उस पार एक-दो व्दीप हैं,यहाँ छोटी बस्तियाँ हैं। रेस के दिन इन बस्तियों के घरों पर और किनारे-किनारे खड़ी नावों पर हज़ारों लोग इकठ्टे हो जातें हैं।पानी की इस लंबी सड़क को पार कर हम कुट्टनाड के छोटे-छोटे रास्तें में घुसें। दोनों तरफ छोटे-छोटे घर, खेत और ताड़ के पेड़। नहाती औरतें,बच्चियां।थोड़ा डर,थोड़ा चौंककर पानी में इधर-उधर भागती बतखों के झुंड। किनारे से हाथ हिलाते बच्चे ! कितना खुबसूरत !"[7]

प्रकृति चित्रण के अलावा कोचीन वैलिंगडन द्वीप, डच पैलस, मटानचेरी जेट्टी, आदिशंकराचार्य का जन्मस्थान कालडी, त्रिचूर-गुरुवायूर मंदिर आदि का संक्षिप्त विवरण भी मिश्रजी देते हैं।

निष्कर्ष : 'पेरियार के साथ-साथ' यात्रा संस्मरण में केरल के इतिहास,संस्कृति,सभ्यता,विशषतः प्राकृतिक सौंदर्य का सुन्दर चित्रण लेखक प्रस्तुत करते हैं। मिश्रजी के यात्रा संस्मरण पढते वक्त हम पाठकों को ऐसे लगता है कि यह संस्मरण ही नहीं बल्कि कहीं कविता, कहीं कहानी, कहीं रिपोर्ताज हैं। रिपोर्ताज शैली में लिखी गयी इस यात्रा-संस्मरण में रेलगाडी एरणकुलम स्टेशन तक पहुँचने और केरल से विदा लेने तक का पूरा विवरण है। साथ ही केरल के पाँच जिलों (एरणकुलम, त्रिचूर, इडूक्की, कोट्टयम, अल्लपी) से बहने वाली परियार नदी से गुजरकर प्रकृति के बहुरंगी चित्र सहित और अपनी अनुभूतियों को मिश्रजी पाठकों के सामने रखते है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोविद मिश्र,रंगों की गंध - खंड-2,2010, किताबघर प्रकाशन,पृ.सं.-72
2. वहीं, पृ.सं.-83
3. वहीं, पृ.सं.-79
4. वहीं, पृ.सं.-80
5. वहीं, पृ.सं.-81
6. वहीं, पृ.सं.-83
7. वहीं, पृ.सं.-83

शोध निर्देशक - **डॉ रम्या के आर**

शोध छात्रा , निर्मला कॉलेज

मूवाट्टुपुषा,एरणकुलम

महात्मागाँधी विश्वविद्यालय, कोट्टयम,केरल

अपुत्रयी : दो उपन्यास ; सत्यजित रे की तीन फिल्में

डॉ सूर्याबोस

शोधसारः सत्यजित रे ने विभूति भूषण बंदोपाध्याय के उपन्यासों पर आधारित 'अपु त्रयी' नामक तीन फिल्मों का निर्माण किया- पथेर पांचाली', 'अपराजितो' और 'अपुर संसार'। ये तीनों फिल्में भारतीय सिनेमा के इतिहास में मील का पत्थर मानी जाती हैं। सत्यजित रे का फिल्म-निर्माण दृष्टिकोण रचनात्मक, यथार्थवादी और सामाजिक दृष्टि से गहराई लिए हुए थे।

'पथेर पांचाली' रे की पहली फिल्म थी, जिसमें उन्होंने ग्रामीण बंगाल की गरीबी और मानवीय संवेदनाओं को बारीकी से चित्रित किया। इस फिल्म को कान फिल्मोत्सव में सर्वश्रेष्ठ मानवीय प्रलेख (Best Human Document) का पुरस्कार मिला।

'अपराजितो' में अपु के बचपन से किशोरावस्था तक के जीवन को दर्शाया गया है। इस फिल्म में रे ने अपु के मानसिक और सामाजिक परिवर्तनों को बड़े ही संवेदनशील ढंग से दिखाया।

'अपुर संसार' में अपु की वयस्कता, विवाह, पिता बनने और जीवन के संघर्षों को चित्रित किया गया। इस फिल्म ने व्यावसायिक सफलता भी हासिल की और सत्यजित रे को व्यापक ख्याति दिलाई।

रे के सिनेमा में उपन्यास की आत्मा को बनाए रखने के साथ-साथ उन्होंने पात्रों, दृश्यों और कथानक में कुछ आवश्यक परिवर्तन किए, जिससे फिल्म की गहनता और सजीवता बढ़ी। विभूति भूषण की विधवा पत्नी ने भी यह स्वीकार किया कि रे ने उपन्यास के साथ पूर्ण न्याय किया।

बीज शब्दः सत्यजित रे,अपुत्रयी,पथेर पांचाली, अपराजितो, अपुर संसार, विभूति भूषण बंदोपाध्याय, बंगाली सिनेमा, यथार्थवादी दृष्टिकोण, फिल्म निर्माण, कान फिल्मोत्सव, भारतीय सिनेमा, मानवीय संवेदना, ग्रामीण बंगाल

सत्यजित रे बीसवीं सदी के सर्वोत्तम फिल्म निर्देशकों में एक है। कला और साहित्य के लिए मशहूर कोलकत्ता में उनका जन्म हुआ। उन्होंने अपनी करियर की शुरआत पेशेवर चित्रकार की तरह की। उन्होंने सैंतीस फिल्मों का निर्देशन किया; जिनमें फीचर फिल्में, वृत्तचित्र लघु फिल्में आदि भी शामिल हैं। इनका पहला फिल्म 'पथेर पांचाली' को कान फिल्मोत्सव में सर्वोत्तम मानवीय प्रलेख पुरस्कार मिला। इसको मिलाकर कुल ग्यारह अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिले।

सत्यजित रे न केवल भारतीय सिनेमा के शीर्ष निर्देशकों में से एक थे, बल्कि वे एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति भी थे। एक लेखक, संगीतकार, ग्राफिक डिजाइनर और पटकथा लेखक। उनका जीवन और सृजन भारतीय सिनेमा के विकास की यात्रा का दर्पण है। उन्होंने अपनी फिल्मों में बंगाल के ग्रामीण परिवेश, मानवीय संघर्षों और भावनाओं को प्रामाणिकता के साथ उकेरा।

रे का निर्देशन शैली में यथार्थवाद के साथ गहरी संवेदनशीलता का अनोखा संगम दिखाई देता है। उनकी फिल्मों में मौन दृश्य भी उतने ही प्रभावशाली होते हैं जितने संवाद। उन्होंने कथानक को सरल रखते हुए भी भावनात्मक गहराई और सामाजिक यथार्थ को उभारने में सफलता प्राप्त की। 'अपुत्रयी' के माध्यम से उन्होंने यह दिखाया कि सीमित संसाधनों के बावजूद एक सशक्त कलात्मक और मानवीय फिल्म बनाई जा सकती है।

सत्यजित रे को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी भरपूर सराहना मिली। कान फिल्मोत्सव, बर्लिन फिल्म फेस्टिवल और वेनिस फिल्म फेस्टिवल जैसे प्रतिष्ठित मंचों पर उनकी फिल्मों को अनेक पुरस्कार मिले। उनके सिनेमा ने न केवल भारतीय दर्शकों बल्कि वैश्विक सिने-प्रेमियों को भी प्रभावित किया। 1992 में, उन्हें भारतीय सिनेमा के सर्वोच्च सम्मान दादासाहेब फाल्के पुरस्कार और ऑस्कर लाइफटाइम अचीवमेंट अवॉर्ड से सम्मानित किया गया।

बंगला साहित्य और सत्यजित रे की फिल्मों में एक अनोखी तालमेल है। बचपन से ही उनकी रुचि फिल्मों की ओर रही। फिल्मों से संबंधित 'फिल्म गोवर', 'फोटो प्ले' आदि पत्रिकाओं को वे उनके शब्दों में कहें तो 'निगलते रहते थे'। कालेज के वक्तउनका मन अभिनय से मुड़कर निर्देशन की ओर हो गया ।इसके पीछे दो किताबों का प्रभाव दिखाई देता है। ये दोनों किताब पुष्किन का लिखा हुआ था।

फ्रांसीसी निर्देशक जारेनोय से उनका परिचय होने के बाद उनके फिल्मों के संबंध में जार्नोय से ज्ञान प्राप्त करने लगे ।फिल्म बनाने की तीव्र इच्छा इसी जार्नेव के कारण ही रे जी के मन में पैठ गया रे जी ने सबसे पहले विभूति भूषण बंदोपाध्याय का 'पथेर पांचाली' उपन्यास को फिल्म में बदलने की अपनी इच्छा उनसे ही प्रकट की थी। वे लीक से हटकर भारतीय पृष्ठभूमि में फिल्म बनाना चाहते थे। लोकेशन में जाकर अमेच्वर लोगो के साथ फिल्म बनाना ज्यादातर लोगों की राय में मुश्किल था ।इसी समय उन्हें इतालवी फिल्म 'बैसिकिल थीव्स' देखने का मौक़ा मिला। 'पथेर पांचाली' में वे क्या क्या करने का इरादा रखते थे; उसे 'बैस्किल थीव्स' का निर्देशक डिसिका ने करके दिखाया था। इससे रे का हौसला बढ़ा।

उपन्यास को फिल्म में बदलते समय कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पटकथा बनाना सबसे प्रथम ज़रूरत है । रे के पास पटकथा के नाम पर सिर्फ नोट्स व स्केच थे। वे इससे तृप्त भी थे, क्योंकि कहानी उनके मन में दृढ़ता पूर्वक चिपक गयी थी। उपन्यास से ज़्यादा पात्रों को फिल्म में नहीं ले सकते। पुरोहित ठाकुर हरिहर राय, उनका परिवार अर्थात पत्नी सर्वजया, बेटी दुर्गा, बेटा अपु, फिर उम्र के बोझ से झुकी दूर के रिश्तेदार बहन इंदिरा ठाकुरायिन इन लोगों को चुना ।सिर्फ फिल्म केलिए जरूरी चीजें उपन्यास से चयनित की गई। बाकी सभी प्रतीकों के ज़रिये दिखाने का निश्चय किया गया। उपन्यास में अपु के जन्म के तुरंत बाद इंदिरा ठकुरायिन की मृत्यु होती है। फिल्म में 'बांस' वन के बीच अपु और दुर्गा उनके लाश को देखता है। दोनों बच्चों को तभी मृत्यु की पहचान होती है।

दुर्गा की मृत्यु को भी रे ने फिल्म में अलग तरीके से दिखाया है। तूफानी बारिश में दुर्गा जंगल के बीच ख़ुशी से झूमती हुयी दिखाई देती है ।तूफ़ान के बाद न्यूमोनिया के कारण दुर्गा की मृत्यु होतीहै ;तूफानी बारिश में उसका नाचना मृत्यु का कारण बनता है,यही फिल्म में दिखाया है। दुर्गा की मृत्यु के तुरंत बाद ही फिल्म ख़तम होती है। खानदानी धरती छोड़कर हरिहर पत्नी और बेटे को लेकर काशी चलता है।

सत्यजित रे शहरों में पले बढ़े थे। गाँव के घरों की ढंग कैसी होती है; इसका परिचय उन्हें नहीं था। 'पथेर पांचाली' के लिए जो लोकेशन चुना था वहाँ के लोगों से परिचित होने के बाद; उनसे घुल मिल जाने के बाद वे इस विषय में माहिर हो गए। 'पथेर पांचाली' फिल्म को कान फिल्मोत्सव में स्पेशल जूरी सम्मान मिला 'बेस्ट ह्युमन डोक्युमेंट'। इसके बाद कई फिल्मोत्सवों में सम्मान मिले।

दूसरी फिल्म बनाने के बारे में सोच सोच कर अंत में विभूतिभूषण बंधोपाध्याय के 'अपराजिता' में अपु का जो पात्र है; उसी पर फिल्म बनाने का निश्चय करता है। यहाँ

भी सत्यजित रे को कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है। पाँच - छह साल के अंतराल में दो अपु को दिखाना पड़ता है। इसके लिए एक जैसा लगनेवाले भाईयों को मिलना मुश्किल था ।जैसे तैसे दो बालकों को तय करता है। उनमें साम्य न था फिर भी काम चलाउ था।

दूसरी समस्या लीला नामक पात्र की थी। उपन्यास के पाठकों के लिए वह प्रिय थी। उसे फिल्म से हटाया भी नहीं जा सकता था ।कालेज में पढते वक्तकलकत्ते में अपु का परिचय लीला से होता है। दोनों मित्र बन जाते है। उपन्यास के पाठकों के हिसाब से लीला को रखना पड़ता था। लेकिन रे को ज़रा भी विचार नहीं था। शूटिंग के समय दो दो पात्र लीला के किरदार के लिए आये और चले गए ।तीसरी लड़की को ढुँढना रे नहीं चाहते थे ।इसलिए लीला के पात्र को फिल्म से हटा देते है। उनको लगता है कि लीला के पात्र को हटाये जाने पर ही फिल्म की गति में तेज़ी आ जाएगी।

'पथेर पांचाली' के जैसा ही 'अपराजितो' में भी डॉ मृत्यु दृश्य दिखाता है। उसका फिल्मीकरण कैसे किया जाता है,यह भी एक समस्या है ।हरिहर अपनी अन्तिम-घाटिया गिन रहा है ; एक दिन बड़े सबेरे उसका बडबडाना सुनकर सर्वजया उठती है तो 'गंगा' शब्द सुनाई पड़ता है। वह अपु के हाथ में लोटा दे कर गंगा जल लाने को कहती है।गंगा जल पीते ही हरिहर की मृत्यु हो जाती है।यहाँ रे जी ने गंगा घाट के झुण्ड में उड़ते कबूतरों को दिखाया है। 'अपराजितो' के प्रभावशाली दृश्यों में इसको गिनाया जाता है।

अपु अकेले कोलकत्ता जाता है, पढने के लिए। कलकता स्टेशन में पहली बार उतरती अपु की मानसिकता को दिखाना एक चुनौती था। अपु प्लेटफार्म में उतरता है। एक बड़ा सा सड़क पार करते ही बारिश होने लगती है। बारिश से बचने के लिए अपु एक कारपोर्च में खडा होता है। वहाँ खड़े खड़े वे कलकत्ता के मिश्रित संस्कार को देखता है। फ़ारसी भाषा में बात करते दो काबुलीवाला, दो चीनी लोग, हिंदी में बात करते लोग सबको देख कर भौंचक पड़े अपु को हम फिल्म में देख सकते है।

'अपराजितो' फिल्म में दूसरी मृत्यु सर्वजया की है।उम्र के बढ़ने के साथ अपु अपनी माँ से दूर होता है। शहर का आकर्षण ,वहां दोस्त का मिलना तथा प्रेस में काम मिल जाने के कारण वह सर्वजया के पास ज़्यादा आता - जाता नहीं था। सर्वजया अपने बेटे को देखने के लिए तड़पती रहती है। मृत्यु के कुछ क्षण पहले भी उसे लगता है कि अपु आ गया है। वह किसी तरह गिरती पड़ती दरवाज़ा खोलकर देखती है। घने अँधेरे में जुगनुओं के अलावा उसे कुछ दिखाई नहीं देता। इस दृश्य का यथावत चित्रण फिल्म में देखा जा सकता है। 'अपराजितो' फिल्म भी अंतर राष्ट्रीय तौर पर कई सम्मान हासिल किये। स्वर्ण सिंह, क्रिटिक अवार्ड आदि इसमें प्रमुख है।

अपु त्रयी का तीसरा फिल्म 'अपुर संसार' भी 'अपराजितो' उपन्यास से लिया गया है। बोक्स ऑफिस में उनके पिछ्ले दो फिल्में हिट नहीं हुए थे ।इसलिए वे साधारण लोगों की रूचि के हिसाब से 'अपुर संसार' बनाने का निश्चय करता है। उसका कथानक इस प्रकार है - अपु अपने दोस्त के साथ उसके मामाजी की बेटी की शादी में जाता है। मुहूर्त के वक्त मालूम होता है कि दुल्हा पागल है। उस लगन में लड़की की शादी नहीं हुयी तो लड़की लग्न भ्रष्ट कहलाएगी ;उसकी शादी कभी नहीं होगी।अपु उससे शादी करने के लिय तैयार हो जाता है। वे ख़ुशी से जीते है ; लेकिन बेटे को जन्म देते ही उसकी मृत्यु हो जाती है। अपु बच्चे को अपनाता नहीं और घर छोड़ कर चला जाता है। अंत में अपु का दोस्त उसे ढूंढ निकलता है और अपु अपने बेटे को स्वीकारता है।

कहा जाता है 'थर्ड टाइम लक्की', वही हुआ। फिल्म हिट हुआ। राष्ट्रपति का स्वर्ण पदक मिला। कई दूसरे इनाम मिले । इसका नायक सुमित्र चट्टोपाध्याय बंगला का विख्यात नायक बना। नायिका शर्मिला टगोर बंबई गयी और हिंदी सिनेमा की सरताज बन गयी।

विभूतीभूषण बंधोपाध्याय के उपन्यासों से सत्यजित रे ने तीन श्रेष्ठ दृश्य काव्यों का निर्माण किया। बंधोपाध्याय जी की पत्नी ने रे से कहा था कि "उन्होंने उपन्यासों के साथ न्याय किया है ।अगर बन्धोपाध्याय जी जीवित रहते तो वे भी कृतार्थ होते। उपर्युक्त शब्दों से ही मालूम हो जाता है कि उपन्यासों में सत्ता को सत्यजित रे ने किस खूबसूरती से फिल्माया है।

उनकी हर फिल्म में संगीत, दृश्य और कथानक का संयोजन इस तरह होता है कि वह दर्शक के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ता है। 'पथेर पांचाली' की सादगी हो, 'अपराजितो' में जीवन के प्रति जिज्ञासा, या 'अपुर संसार' में भावनात्मक उथल-पुथल हर फिल्म में रे ने मानवीय मनोविज्ञान को अत्यंत बारीकी से चित्रित किया है।

उपसंहारः सत्यजित रे की 'अपु त्रयी' भारतीय सिनेमा के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। उन्होंने विभूति भूषण बंदोपाध्याय के उपन्यासों को न केवल पर्दे पर जीवंत किया, बल्कि भारतीय सिनेमा को वैश्विक मंच पर नई पहचान दिलाई। 'पथेर पांचाली', 'अपराजितो' और 'अपुर संसार' जैसी फिल्मों के माध्यम से रे ने साधारण ग्रामीण जीवन, मानवीय भावनाओं और जीवन के यथार्थ को अत्यंत संवेदनशीलता और कलात्मकता से प्रस्तुत किया।

अपु त्रयी के निर्माण में उन्होंने जिन समस्याओं का सामना किया, वे उनकी लगन, कल्पनाशीलता और सिनेमा के प्रति उनके अद्वितीय दृष्टिकोण को दर्शाती हैं। यह त्रयी न केवल एक कालजयी रचना के रूप में ख्याति प्राप्त करती है, बल्कि एक पीढ़ी को सिनेमा की नई भाषा समझने और सराहने की दृष्टि भी प्रदान करती है। सत्यजित रे की यह उपलब्धि दर्शाती है कि साहित्य और सिनेमा का सही समन्वय कैसे उत्कृष्ट कलात्मक सृजन कर सकता है।

सत्यजित रे की रचनाओं का महत्व आज भी उतना ही है, जितना उनके समय में था। उनकी फिल्मों ने न केवल भारतीय सिनेमा को एक नई दिशा दी, बल्कि आने वाली पीढ़ियों के फिल्मकारों को प्रेरित किया। उनका सिनेमा इस बात का उदाहरण है कि कला और सृजन की कोई सीमा नहीं होती।यह एक सार्वभौमिक भाषा है, जो हर दिल तक पहुँच सकती है। इस दृष्टि से सत्यजित रे का योगदान भारतीय कला और संस्कृति के लिए एक धरोहर है, जिसे सदैव स्मरण किया जाएगा।

सहायक ग्रन्थ

1 सत्यजित राय की कहानियाँ - सत्यजित राय ,राजकमल प्रकाशन,नयी दिल्ली 2018

2 पथेर पांचाली फिल्म

3 अपराजितो फिल्म

4 दी वर्ल्ड ऑफ़ अप्पू

श्रीरागम, कोट्टीयम पी ओ,
कोल्लम जिला, केरल

कबीर के ईश्वर चिंतन व ईसाई चिंतन - एक तुलना

रेवती एस

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। धरती में उन मनुष्य के अस्तित्व किसी एक सकारात्मक ऊर्जा द्वारा केंद्रित है। इसी पॉजिटिव एनर्जी को ईश्वर कहा जाता है। इन पॉजिटिव एनर्जी या ईश्वर के लिए पूजा-पाठ, व्रत व धर्माचरण करना सभी मानव जाति का धर्म माना जाता है। कबीर जी भी ईश्वर की आराधना करते थे। लेकिन उनके ईश्वर को कोई रंग, रूप, भाषा या धर्म नहीं, उनके लिए वह बेरंग, निराकार परब्रह्म है।

"निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई,/अवगति की गति लखी न जाई। चारि वेद जाके सुमृत पुरांना,/नौ व्याकरणां मरण ना जाना।।"[1]

कबीर के समय पर काव्य की दो परंपराएं थीं, काव्यशास्त्रीय नियमों का पालन कर रचनाओं को लिखनेवाले लोग और दूसरा उन सारे नियमों को तोड़कर लिखने वाले लोग। पहली परंपरा के काव्यशास्त्रीय कवियों का मुख्य उद्देश्य यशोलिप्सा एवं अर्थ-प्राप्ति था। लेकिन दूसरी परंपरा के कवियों ने काव्य को स्वानुभूत परमतत्व का दिग्दर्शन तथा आत्म-निवेदन की अभिव्यक्ति का साधन मानते थे। इन कवियों को भव-सागर में पड़े दुःखी प्राणियों का त्राण करके आनंद प्राप्त करना वांचनीय थी। इसलिए बौद्ध,सिद्ध और नाथों की कथन शैली इस परंपरा से संबध्द थी। कबीर भी इसी परंपरा के अनुयायी थे। सुरेंद्र नाथ श्रीवास्तव के शब्दों में 'कबीर-वाणी का अटूट संबंध सिद्ध, नाथों, तथा जैन मुनियों की वाणी से रहा है। कबीर की अभिव्यंजना-शैली पर इनका प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। कबीर की साखियों और सिद्धों के 'दोहा कोश' तथा जैन मुनि रामसिंह के 'पाहुड-दोहे' में ही नहीं, अनुभूति-पक्ष में भी समानता विद्यमान है।"[2]

इसी तरह कबीर और उनके ग्रंथों पर जितना प्रभाव जैन, बौद्ध, नाथ धर्म की है उतना ही भारत के सभी धर्मों के प्रभाव उनपर देखा जा सकता है। वही एक धर्म है ईसाई धर्म। ये धर्म भारत का न होकर अब पूरे भारत में अपने जड़े मजबूत कर के वटवृक्ष के समान विराजते है।

ईसाई धर्म का आधार ग्रंथ या धर्मग्रंथ 'बाइबिल' है। अंग्रेजी शब्द 'बाइबिल' लातीनी शब्द 'बब्लिया' से व्युत्पन्न है। यूनानी 'बीब्लिया', 'बीब्लियोन' का बहुवचन है, जोकि 'बीब्लोस' शब्द से व्युत्पन्न है। बीब्लोस का अर्थ कोई भी लिखित दस्तावेज़ या प्रलेख है, लेकिन मूल रूप से वह जो 'पपीरूस' अर्थात श्रीपत्र के डंठलों से बने कागज़, पर लिखा हुआ था। यह 'पपीरूस' फिनीशिया के बीब्लूस नामक शहर से आयात किया जाता था। जिसके कारण यह शब्द पुस्तक के लिए प्रचलित हो गया।"[3] अंग्रेज़ी के समानांतर हिंदी में भी 'बाइबिल' शब्द का प्रयोग होता है। ध्यातव्य है कि विश्व के लगभग सभी भाषाओं में बाइबिल शब्द ज्यों का त्यों प्रयुक्तकिया जाता है। बाइबिल की कोई एक मूल भाषा नहीं है। पुराने विधान की मूल भाषा इब्रानी है। इसके कुछ अंश अरामी और यूनानी में भी पाए जाते हैं। जब कि 'नया विधान' की मूल भाषा यूनानी है। हेनरी स्नैडर के अनुसार 'बाइबिल संपूर्ण अथवा आंशिक रूप में अब तक लगभग 1000 भाषाओं में अनूदित हुआ है। विश्व का कोई भी साहित्य इतनी भाषाओं में और इतने भिन्न-भिन्न संस्करणों में उपलब्ध नहीं है। केवल बाइबिल को ही इतना विश्वव्यापी प्रचार प्राप्त हुआ है।"[4]

अनेक देशों में प्रचलित ईसाई धर्म और बाइबिल भारत की जाति-पांति, छुआ-छूत और जातीय दूर्व्यवहार के कारण भारतीय जनताओं के बीच अपना स्थान प्राप्त किया। अन्य धर्म के अंतर्गत मनुष्य के बीच जो जातीय

सीमाएँ थीं वही सीमाएँ ईसाई धर्म में न होने के कारण इसको सर्व स्वीकार्य होने लगा। अतः इसका बहुत अधिक प्रचार भारत में हुआ। कबीर जी को हिंदू धर्म ने जन्म दिया और मुसलमानी धर्म ने पाल-पोस कर बड़ा किया। अतः कबीर जी ने हर एक धर्म की सच्चाई को अपनाकर बुराई का विरोध किया। इसलिए कबीर पर ईसाई धर्म बहुत अधिक प्रभावित हो गया। कबीर दास साहित्य और बाइबिल दोनों में आधारभूत समानताएँ विद्यमान है-

पहले ही कहा जा चुका है पुराना विधान ईसा पूर्व के यहूदी ईश्वर चिंतन का ऐसा मूलाधार है जो सहज रूप में 'नया विधान' के ईसाई-चिंतन की पृष्ठभूमि बन सका है। ठीक उसी प्रकार श्रौत-परंपरा से लेकर उपनिषद्, गीता, अद्वैत दर्शन वैष्णव आदि तक के चिंतन ने कबीर के ईश्वर की पृष्ठभूमि तैयार की है।

बाइबिल व बीजक का नाम और अर्थ विस्तार :- 'बाइबिल' और 'बीजक' ग्रंथों का नाम और अर्थ विस्तार का विवेचन इस प्रकार है कि 'बाइबिल' नाम मूलतः फिनिशिया के एक शहर का नाम था, जहाँ से कागज़ बनाने का कच्चा माल आया जाता था और बाद में यहूदी और ईसाई धर्म पुस्तकों के लिए 'पुस्तक' के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। व्यापक अर्थ में यह शब्द किसी भी विषय की प्रामाणिक रचना के लिए प्रचलित हुआ। नाममात्र से बाइबिल की अंतर्वस्तु का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। अतः 'बाइबिल' नाम विशाल होने के साथ-साथ सामान्य भी है।

इस प्रकार कबीर साहित्य में बीजक नाम 'कबीर साहित्य' की तुलना में अधिक सार्थक है। प्रचलित अर्थ में बीजक वह सूची है, जिसमें किसी माल का ब्यौरा, दर और मूल्य आदि लिखा हो। अन्य अर्थ में 'बीजक' का गुप्तधन बनानेवाली सूची है। बीजक का कबीर की रचनाओं से प्रत्यक्ष संबंध नहीं होने पर भी कबीर-पंथियों में कबीर की रचनाएँ बीजक के नाम से ही जानी जाती है। साहित्य की दृष्टि से बीजक को कबीर की रचनाओं का एक प्रमुख संग्रह होने की मान्यता प्राप्त है। तुलनात्मक स्तर पर ईसाई धर्म-पुस्तक बाइबिल के समक्ष कबीर-पंथ में स्वीकृत 'बीजक' को ही मानना उचित है, क्योंकि ईसाई मत में बाइबिल की जो मान्यता है वही मान्यता कबीर-पंथ में 'बीजक' की है ।

साहित्य ग्रंथ अथवा धर्म ग्रंथ :- बाइबिल व बीजक दोनों साहित्य ग्रंथ एवं धर्म ग्रंथ के रूप में मान्य है। बाइबिल केवल ईसाइयों का ही धर्म ग्रंथ नहीं है, वरन् विश्व के सर्वोत्तम और सर्वमान्य धर्म-ग्रंथों में भी परिगणित होती है। बाइबिल ईश्वर की वाणी है। यह मनुष्य के लिए ईश्वर का संदेश है और मानव मात्र के लिए ईश्वर की मुक्तियोजना की कथा है। इस रूप में धार्मिकता तथा अध्यात्मिकता का अनन्य स्रोत है।

बीजक जो कि कबीर-साहित्य का एक सांप्रदायिक संस्करण है, कबीर पंथ में पूज्य ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित है। कबीर-पंथी कबीर को भगवान के अवतार के रूप में मानते हैं और उनकी वचन-सुधा को ईश्वर की वाणी समझते हैं। कबीर की रचनाओं की अंतर्वस्तु मुख्यतः ईश्वर- चिंतन ही है। उनके काव्य के लौकिक रूपकों में भी अलौकिक तत्व अदृश्य रूप से विद्यमान हैं। भक्तिभाव उनकी रचनाओं का प्राण है। अतः यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि बीजक कबीर पंथ का धर्म ग्रंथ है। बीजक ही कबीर-पंथ में दीक्षित साधु-संतों तथा उससे संबंधित गृहस्थ सदस्यों के जीवन-मार्ग को निर्देशित करता है। यही कारणों से कहा जा सकता है कि कबीर साहित्य मुख्यतः काव्य है। यह गौण रूप से ही भक्ति ग्रंथ है और कबीर पंथ के संप्रदायिक संदर्भ यह एक धर्म ग्रंथ भी है। बाइबिल मुख्य रूप से धर्म ग्रंथ है और गौण रूप से ही काव्य या साहित्य ग्रंथ है।

बीजक और बाइबिल स्वलिखित रचना नहीं :- यद्यपि कबीर साहित्य कबीर के नाम पर प्रचलित है, फिर भी यह कबीर द्वारा लिखित नहीं है। कबीर का निरक्षर होना प्रसिद्ध

है। 'मसि कागद छुओ नहीं' - से यही बात इंगित होती है अर्थात् कबीर- साहित्य कबीर की स्वलिखित रचना नहीं है। 'बाइबिल' शब्द मूल रूप से 'पुस्तक' से जुड़ी हुई होकर किसी व्यक्ति से संबंद्ध नहीं है। ईसाई धर्म-दर्शन का आधार-ग्रंथ होने के कारण बाइबिल को ईसाई धर्म के मूल पुरुष ईसा पर अवलंबित होना चाहिए। लेकिन, बाइबिल न तो ईसा पर आधारित है, न उसकी कोई रचना ईसा द्वारा लिखित है । ईसा धर्म पुरु ष थे और उन्होंने अपने हाथों से कुछ नहीं लिखा। अर्थात् बाइबिल ईशा की स्वलिखित रचना नहीं हैं। अतः कबीर-साहित्य और बाइबिल दोनों अपने-अपने मूल पुरुष द्वारा लिखित रचनाएँ नहीं हैं।

विभाजन, भाषा, अनुवाद और संस्करण :- बाइबिल के नए-पुराने विधान क्रमशः 46 तथा 27 पुस्तकों में समाविष्ट हैं और प्रत्येक पुस्तक कई 'अध्यायों' में तथा प्रत्येक अध्याय कई 'वाक्यों' में विभाजित है। कबीर साहित्य मुख्यतः साखी, सबद, रमैनी में विभाजित है। साखियां 59 'अंगों' में विभाजित हैं और प्रत्येक अनुभाग में अनेक साखियाँ है। उसका सबद-भाग रागों के अनुसार विभाजित हैं और रमैनियां पद-संख्या के अनुसार ध्रुपदी, चौपदी - जैसे शीर्षकों में विभाजित है। बाइबिल और कबीर साहित्य दोनों अपने वर्तमान स्वरूप में क्रमानुसार विभाजित और व्यवस्थित होकर उपलब्ध हैं।

बाइबिल के दोनों भागों की मूलभाषा क्रमशः इब्रानी और यूनानी है। संपूर्ण बाइबिल का अनुवाद अब तक हजारों भाषाओं में उपलब्ध है। कबीर साहित्य की मूल - भाषा एक प्रकार की पंचमेल खिचड़ी या सधुक्कड़ी बताई जाती है और विभिन्न संग्रहों में कुछ भिन्नता के साथ उसकी वही भाषा सुरक्षित है। अंग्रेजी के अलावा कुछ अन्य भाषाओं में भी कबीर-कव्य का अनुवाद आंशिक रूप से उपलब्ध है। काव्य होने के कारण अनुवाद की संभावनाएँ उसमें असंभव न होकर भी सीमित हैं।

बाइबिल के अनेक संस्करण उपलब्ध हैं। लेकिन कैथॅलिक समाज द्वारा मान्यता प्राप्त 'पवित्र बाइबिल' के हिंदी संस्करण को इस अनुशीलन का आधार बनाया गया है। ठीक उसी प्रकार कबीर-साहित्य के भी कई संस्करण उपलब्ध है, जिनमें तीन मुख्य हैं। इनमें डॉ.श्यामसुंदर दास द्वारा संपादित 'कबीर ग्रंथावली' का संस्करण ही यहाँ कबीर-संबंधी अध्ययन का आधार माना गया है। कबीर-साहित्य और ईसाई बाइबिल में प्रतिफलित केंद्रीय व्यक्तित्व क्रमशः कबीर और ईसा मसीहा का है। उन महान् व्यक्तियों के अभाव में तत्संबंधी साहित्य भी आविर्भूत नहीं हुआ होता। अर्थात् कबीर-चिंतन में हो या ईसाई दर्शन में, ईश्वर-दृष्टि का यथार्थ आधार तत्संबंधी साहित्य न होकर स्वयं कबीर या ईसा के व्यक्तित्व हैं। अतः बीजक और बाइबिल में कितनी समानताएँ देखा जा सकता है ये दोनों समानताएँ उन दोनों ग्रंथों के आधारित व्यक्तियों पर ही देखा जाता है।

नाम वैशिष्ट्य :- दोनों नाम के साधारण न होकर कुछ विशिष्ट अर्थ लिए हुए हैं। 'कबीर' नाम 'श्रेष्ठ', 'महान' आदि अर्थों में अभिव्यक्तहोता है। 'ब्रह्म' के अर्थ में कबीर नाम कबीर के ईश्वर-तादात्म्य की ओर संकेत करता है। 'हल्के ढंग के काव्य' के रूप में 'कबीर' नाम आम जनता की भाषा में लोकप्रिय काव्य के प्रणेता के रूप में व्यक्तहोता है। इस प्रकार 'कबीर' नाम अपने विशिष्ट अर्थों में व्यक्तित्व की महानता को स्थापित करता है।

इसी प्रकार ईसा का नाम भी विशिष्ट है। 'ईसा' नाम मूल रूप से इब्रानी 'यहोशूआ' से निष्पन्न है और इस शब्द का अर्थ 'यहोवा' अर्थात् 'प्रभु मुक्तिया उद्धार करता है'। ईसा पर आरोपित होकर वे शब्द ईश्वरीय व्यक्तित्व को अभिव्यंजित करते हैं। ईसा अर्थात् 'एम्मानुएल' शब्द का अर्थ ('ईश्वर हमारे साथ है') भी ईसा के व्यक्तित्व को ऐश्वरिक गुणों से विभूषित कर देता है। 'मसीहा' शब्द भी 'अभिव्यक्त' के अर्थ में ईसा के औपचारिक दिव्य पुरुषत्व का समर्थन करता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि दोनों महापुरुषों के नाम-विश्लेषण में कुछ दिव्य विशिष्टता का साम्य अवश्य है।

जीवन वृत्त की विलक्षणता :- ईसा और कबीर दोनों के जीवन-वृत्त के विषय में कई विलक्षण तत्व द्रष्टव्य हैं। ईसा का आविर्भाव-काल अब जो प्रचलित है वह न होकर उससे चार वर्ष पीछे और तिथि से कुछ दिन पश्चात् होना लगभग निश्चित है। कबीर का आविर्भाव-काल भी ई. सन् 1398 अधिक संभावित होते हुए भी संदिग्ध है। ईसा और कबीर दोनों का आविर्भाव रहस्यमय रहा है। ईसा का जन्म मानव-जन्म की सामान्य प्रक्रिया से हटकर ईश्वरीय शक्तिसे होना सुसमाचारों में उल्लिखित तथा ईसाई समाज द्वारा मान्य है। दंतकथाओं के अनुसार विधवा ब्राह्मणी का पुत्र होकर लहरतारा तालाब में प्रत्यक्ष बताया जाना कबीर के विषय में भी विलक्षण बात है। जोसफ का ईसा का पालक-पिता होना तथा नीरू नीमा नामक मुसलमान दंपति का कबीर का माता-पिता होना भी प्रायः सर्वस्वीकृत तथ्य है। मानव-पिता का न होना ईसाई के तथा असली माता-पिता का अज्ञात रहना कबीर के भी विलक्षण आविर्भावों के साम्य के बिंदु हैं। ईसा और कबीर दोनों के प्रौढ़ावस्था तक का जीवन अज्ञात है। दोनों का पारिवारिक जीवन भी ध्यान देने योग्य बिंदु है। ईसा अविवाहित और पूर्ण संत थे। असामान्य बुद्धि, ज्ञान और विवेक से संपन्न होकर 12 वर्ष की आयु में ही वे पंडितों से तर्क-वितर्क करते थे। 'सुसमाचार' के प्रचार के लिए वे अंतिम तीन वर्ष पूर्णतः भ्रमण में ही रहे। कबीर का साधु-सत्संग के लिए देश-भ्रमण, अपने घर पर साधुओं का आतिथ्य-सत्कार, भक्तिप्रवणता के कारण गृहस्थी में ध्यान का कम होना आदि बातें भी प्रसिद्ध हैं। अंत में दोनों की मृत्यु की प्रचलित कथाएँ इस प्रकार है कि ईसा क्रूसारोपित होकर लज्जाजनक मृत्यु का वरण किया तथा अपने पुनरुत्थान से मृत्यु को पराजित किया जबकि कबीर ने मृत्यु-समय पर अधमों का स्थान माने जानेवाले मगहर जाकर तिरोधन प्राप्त किया और मगहर की अधमता को दूर किया। इस प्रकार ईसा और कबीर आविर्भाव से लेकर तिरोधान तक अपने-अपने जीवन वृत्तों में संदिग्धता, रहस्यमयता, महामानवत्व आदि विलक्षणताओं में साम्य रखते हैं।

क्रांतिभावना और प्रगतिशीलता : ईसा ने संहिता-केंद्रित प्राचीन विधान के स्थान पर प्रेम-केंद्रित नवीन विधान का आविष्कार करके समाज में एक क्रांति उत्पन्न कर दी। नियम-केंद्रित समाज-व्यवस्था तथा अनुष्ठान-केंद्रित उपासना-विधान को तोड़ना ही उनकी असली क्रांति थी। प्रेम-मार्ग की स्थापना करके मानवता के मार्ग को प्रशस्त करना ईसा की प्रगतिशीलता थी। ईसा की यह क्रांतिकारी प्रवृत्ति तथा प्रगतिशीलता आध्यात्मिक के साथ सामाजिक भी रही। कोढी का स्पर्श करके उन्होंने उसे समाज में पुनस्थापित किया। सामाजिकता की भाषा में आध्यात्मिकता का अनुवाद करना ही ईसा की क्रांतिकारी प्रगतिशीलता थी।

सहजनों के लिए भक्तिको सुगम बनाना कबीर की एक अनन्य क्रांति थी। विभिन्न धर्मों तथा संप्रदायों में प्रचलित संकीर्णता तथा पारस्परिक भेद-भाव मिटाने हेतु कबीर ने जो साहसपूर्ण कदम उठाया वह भी उनकी क्रांतिकारिता का परिचायक है। मानवता की प्रतिष्ठा हेतु समाज-सुधार की योजना बनाकर उन्होंने मानव-समाज को प्रगति-पथ पर नए सिरे से प्रवृत्त किया। इस प्रकार कबीर ने भी क्रांतिकारी प्रगतिशीलता का नेतृत्व करके तद्युगीन सामाजिक जीवन को अधिक सरल और सार्थक बनाने का उद्यम किया।

जिन समानताएँ कबीर और ईसा के चरित्र में देखने को मिलता है उसी समानताएँ उन दोनों की ईश्वर चिंतन की वैचारिक पृष्ठभूमि पर भी देखा जा सकता है।

एकेश्वरवाद : ईसाई दर्शन की पूर्व-परंपरा के अंतर्गत यहूदी धर्म अपनी विकसितावस्था में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करता है। यहूदी इतिहास के पूर्व की प्राकृतावस्था में बहुदेववाद का ही बोलबाला था। मिस्र की दासता के अनंतर निर्गमन की घटना यहूदी प्रजा के लिए एकेश्वरवाद की बुनियाद बनी। मानवेतिहास को नियमित करनेवाले ईश्वर के इस मुक्तिकार्य ने एकेश्वरवाद को यहोवावाद

अर्थात् प्रभुवाद में एक लंबी विकासयात्रा के अंतर्गत परिवर्तित किया। इसराएली प्रजा की दुर्बलता यहूदी एकेश्वरवाद को निरंतर आघात पहुँचाती रही। फिर भी, एकेश्वरवाद 'पुराना विधान' में उत्तरोत्तर प्रबल होता रहा। इस एकेश्वरवाद ने ईसाई ईश्वर-चिंतन की दिशा निर्देश की।

कबीर के एकेश्वर की पूर्व-परंपरा में उपनिषद् की मूल्य मान्यता है कि ईश्वर एक है। अद्वैत-दर्शन ने एकेश्वरवाद को अतिशय पूर्णता प्रदान की। इस्लाम तो कट्टर एकेश्वरवादी था ही। सूफियों की उधार-भावना ने अद्वैतवाद और इस्लामी एकेश्वरवाद का सामान्य कर कबीर को प्रस्तावित किया। इस लंबी विकास-यात्रा और सम् ान्वय ने कबीर के मार्ग को सुगम बनाया।

अतः यह कहा जा सकता है कि इस्लाम के माध्यम से, अर्थात परोक्ष रूप से, ईसाई और यहूदी एकेश्वरवाद का प्रभाव कबीर पर पड़ा हो, यह संभव है।

प्रेम और भक्तिः 'पुराना विधान' के ईश्वर के अभिलक्षणों के अंतर्गत ईश्वर का शासक-स्वरूप मुख्य है। तदनुसार ईश्वर राजा है, पति है, पिता भी है। अपनी इसराएली प्रजा के प्रति, अपनी इसराएली पत्नी के प्रति और इसराएली संतान के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार यहोवा या प्रभु का गुण है। कुंहार के समान अपनी सृष्टि को स्नेहिल स्पर्श से रचनेवाला प्रभु वैसा प्रेमपूर्ण समर्पण अपनी प्रजा से भी अपेक्षित करता है। इसराएल का प्रेमभरा जवाब ही भक्तिहै। ईसाई दर्शन के अनोखा प्रेम-तत्व तथा भक्ति को यहूदी इतिहास की इन धाराओं ने प्रभावित किया।कबीर के प्रेम और भक्ति तत्व की पूर्व-परंपरा में कई धाराएँ सम्मिलित थीं। नारदी भक्तिऔर उसमें निहित प्रेम-तत्व भारतीय परंपरा के मूल हैं। वैष्णव-भक्तिपरंपरा दक्षिण से एक विशाल आंदोलन बनकर स्वामी रामानंद तथा नाथ-संप्रदाय के माध्यम से कबीर तक पहुँची थी। ईसाई प्रेममूलक भक्तिदक्षिण में ईसवी वर्ष के प्रारंभ से लेकर ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों तक विद्यमान थी यह संभव नहीं है कि भारतीय परंपरा में पहले से विद्यमान थी। यह असंभव नहीं है कि भारतीय परंपरा में पहले से विद्यमान प्रेम और भक्तिचलते-चलते कुछ क्षीण हो गई हो और ईसाई गतिविधियों से पुनः जागृत हो गई हो। ठोस प्रमाणों के अभाव में इस संदर्भ में कोई भी निश्चित कथन तर्कसंगत नहीं होगा। प्रेम और भक्तितत्व की मूल देन की बात छोड़कर दक्षिण की समसामयिक भक्तिजागृति की ओर ध्यान दिया जाए तो उसमें ईसाई योगदान को अस्वीकारा नहीं जा सकता है।

कबीर के प्रेम तत्व पर प्रभाव की एक प्रसिद्ध धारा सूफी दर्शन है। भारत में प्रेम-तत्व प्रारंभ से ही विद्यमान था। भारत को किसी विदेशी प्रभाव की आवश्यकता नहीं थी। फिर भी, विशेष परिस्थितियों में एक ही स्थान पर रहनेवाली संस्कृतियों का एक-दूसरे पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। कबीर की कई शताब्दियों के पूर्व भी सूफी संतों का भारत में आगमन हुआ था। सत्संग-प्रीय कबीर सूफी संतों से मिलते-जुलते भी थे। अतः सूफी प्रेम-तत्व का प्रभाव कबीर पर सहज रूप से हुआ होगा।

प्रेम और भक्तितत्व के स्रोत और प्रभाव की संभावनाओं से ध्यान हटाकर कबीर-चिंतन और ईसाई-चितंन पर दृष्टि केंद्रित करते हुए यह कहना समीचीन होगा कि पूर्व-परंपराओं में प्रेम और भक्तिके तत्व विद्यमान थे। 'पुराना विधान' में ये तत्व ईसाई प्रेम-धर्म की पीठिका के लिए पर्याप्त थे। कबीर की पूर्व-परंपरा में प्रेम भारतीय नारीदी-वैष्णव धाराओं के अतिरिक्त ईसाई-सूफी धाराएँ भी रही, जिन्होंने कबीर की विरासत को अधिक विशाल और दृढ़ बनाया है।

राजनीतिक पराधीनता और अराजकता : ईसाई-कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ बहुत अस्त-व्यस्त थीं। इसराएल कई पड़ोसी देशों की दास्ता में रहा। ईसा के समय फिलिस्तीन रोमी अधीनता में था। तत्ससंबंधित प्रतिकूल-अनुकूल परिस्थितियों के कारण राजनीतिक ध्रुवता और अराजकतापूर्ण वातावरण कायम था। कबीर के सामने आक्रमणशील तथा

कट्टरवादी मुसलमान शासकों का बलपूर्वक शासन था। वे न्यायपूर्ण शासन में रुचि नहीं रखते थे और हिंदुओं पर अत्याचार करते थे। अतः कलह, अराजकता तथा अशांति से कलुषित वातावरण में राजनीतिक निष्प्रयोजन साबित हो रही थी। स्पष्ट है, ईसा-कालीन और कबीर-कालीन राजनीतिक परिस्थितियों में अराजकता, पराधीनता तथा अशांति के वातावरण में साम्य होते हुए भी कबीर के वातावरण में उथल-पुथल की प्रखरता अधिक थी।

आर्थिक दुर्व्यवस्था, शोषण और निर्धनता : ईसा के समसामयिक आर्थिक विकटता, राजनीतिक पराधीनता का सीधा परिणाम थी। शासक देश की तरफ से नागरिक कर, पूजनपद्धति तथा भीमकाय अनुत्पादक पुरोहित वर्ग के संभार के लिए धार्मिक कर आदि के कारण सामान्य जनता ऋण-ग्रस्त, भूमिहीन तथा बेकार हो गई थी। कबीर के इर्द-गिर्द का समाज भी आर्थिक संकटों के चंगुल में था। महाजन तथा आम जनता, मुसलमान तथा हिंदू आदि में असमान वितरण तथा निर्मम एवं कठोर कर प्रणाली के कारण आम जनता कर्ज, शोषण तथा दारिद्र्य से दीन और परेशान होकर कामों में लगी हुई थी।

धार्मिक कट्टरवाद, बाह्याडंबर तथा तानाशाही : ईसा के समय धार्मिक सामाज भेदभाव से युक्त था। भारत के ब्राह्मण-वर्ग के सामान शुद्धता-विधान को आधार मानकर श्रेष्ठता ग्रन्थि से युक्त एक अभिजात वर्ग अपने को अतिविशिष्ट वर्ग मानता था। वे अन्यों को धार्मिक कृत्यों के लिए अशुद्ध और निकृष्ट मानकर तानाशाही करते थे। धार्मिक समाज संप्रदायों में विभक्त होकर मूल-सिद्धांत, पलायनवाद और प्रचंडता आदि को अपनाए हुए थे। कबीर का धार्मिक समाज भी अत्यंत जीर्ण-शीर्ण दशा में था। हिंदू धर्म अनेक मतवाद, संप्रदाय तथा साधनाओं का जाल था। जाति व्यवस्था, अंध-विश्वास, मूर्ति-पूजा, बाह्याडंबर आदि का एक दुष्चक्र भी बना हुआ था। ब्राह्मण-केंद्रित चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था ने समाज को शोषण, भेद-भाव तथा छुआ-छूत की विकराल स्थिति में पहुँचा रखा था। मुल्लाओं से प्रचलित मुस्लिम समाज की बाह्योपचारों के कट्टरपन से मुक्तनहीं था। दोनों धर्मों का परस्पर संबंध भी शासक-शासित की धार्मिक मान्यताओं की टकराहट के अपनाए जाने के कारण अमानवीय यातनाएँ तथा दयनीय दासता की स्थिति से युक्त था।

अतः निष्कर्ष से यह कहा जा सकता है कि कलुषित परिस्थिति तथा उससे मुकाबले की प्रतिक्रिया दोनों के वातावरण में साम्य दिखाई देता है। फिर भी, पूर्णतः धार्मिक पुरुष होने के कारण ईसा की प्रतिक्रिया आध्यात्मिक रही। साथ ही, संस्कृति-भेद से जनित वैषम्य भी इन दोनों में द्रष्टव्य है। कबीर के संदर्भ में हिंदू, मुसलमान तथा हिंदू-मुसलमान के त्रिपक्षीय झमेले में समस्या की जटिलता तथा प्रचंडता अधिक होने की प्रतीति होती है।

ईसा ईश्वर-चिंतन से कबीर के ईश्वर-चिंतन की तुलना से अवगत होता है कि दोनों में देशकाल तथा संस्कृति के भेद के कारण स्वरूप और मात्रगत असाम्य होने के बावजूद अनेक बिंदुओं में स्पष्ट साम्य भी है । दोनों में ईश्वर-चिंतन अपनी-अपनी पृष्ठभूमि से उभरी हुई ईश्वरीय परिकल्पना है। पृष्ठभूमि, परिकल्पना तथा सामाजिक आशय के तीनों स्तरों पर दोनों आपस में भी बहुत समरूपता रखते हैं। ईसाई ईश्वर चितंन और कबीर के ईश्वर चिंतन में बहुत अधिक साम्य देखने को मिलता है दोनों युगपुरुष कहने के लायक भी है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. कबीर ग्रंथावली, कमला पति पांडे, पृ. सं - 395
2. कबीर और गंगादास के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, सुरेंद्र नाथ श्रीवास्तव, पृ. सं - 300- 01
3. बाइबिल यू बाइबिल डिक्शनरी, जे.डी.डूग्लस, पृ.सं 137
4. बाइबिल, दिन्यू वेस्टमिंस्टर डिक्शनरी ऑफ दि बाइबिल, हेनरी स्नैडर गहमैन, पृ.सं - 117

शोध छात्रा, सरकारी महिला कॉलेज, तिरुवनन्तपुरम

समकालीन हिंदी उपन्यासों में चित्रित संघर्षमय क्वीर जीवन

रेष्मा के आर

समकालीन हिन्दी उपन्यासों में हाशिएकृत समाज के जीवन संघर्षों को वाणी मिली है। दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, नारी विमर्श, प्रवासी विमर्श आदि कई विमर्श समकालीन हिन्दी साहित्य में आए हैं। क्वीर विमर्श इनमें प्रमुख है।

लिंग या जेंडर के आधार पर शोषण सहनेवाले लोगों को लिंग अल्पसंख्यक कहते हैं। इनमें लेस्बियन, गे, बाईसेक्सुअल, ट्रांसजेंडर आदि कई लोग आते हैं। इन्हें क्वीर समाज कहते हैं।

भारत में एलजीबीटी लोगों को कई सामाजिक और कानूनी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। भारत में एलजीबीटी लोगों ने पिछले एक दशक से काफी प्रगति प्राप्त की है खासकर बड़े शहरों में। फिर भी अधिकांश एलजीबीटी लोग समाज और परिवार के भेदभाव के डर से अपने अस्तित्व को छुपाकर रखते हैं। भारत में कई जगहों में क्वीर समाज के विरुद्ध हत्यायें, हमले और कई तरह के शोषण हो रहे हैं। एलजीबीटी लोगों को अपने परिवारों से विस्थापन का सामना करना पड़ता है। परिवार और समाज उनके अस्तित्व को समझे बिना उन्हें शादी करने के लिए भी मजबूर करते हैं। संवैधानिक दृष्टि से समलैंगिक लोगों को शादी करने के लिए कोई नियम भारत में नहीं है। इस तरह समाज और परिवार में उन लोगों की स्थिति बहुत दयनीय हैं। लोग उनको तिस्कार और हीन भावना से देखते हैं। समाज की संकुचित मानसिकता में बदलाव आने पर ही इनकी स्थिति में सुधार आ सकते हैं।

क्वीर समाज में सबसे अधिक संघर्ष का सामना ट्रांसजेंडर करते हैं। पारिवारिक विस्थापन, कमजोर आर्थिक स्थिति, अशिक्षा, बेरोजगारी, नशाखोरी आदि। इन अनगिनत समस्याओं के कारण उन्हें नाच गाकर या भीख माँगकर और कभी वेश्यावृत्ति के जरिए अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

हिन्दी साहित्य में ट्रांसजेंडर विमर्श का आरंभ कथा साहित्य से माना जा सकता है। पाण्डेय बेचन शर्मा के कुछ कहानियों में क्वीर का जिक्र आता है। लेकिन ट्रांसजेंडर विमर्श की शुरुआत नीरजा माधव के 'यमद्वीप' से माना जा सकता है। यह उपन्यास 2002 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में सदियों से पीडित वर्ग ट्रांसजेंडर समुदाय के सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक, मानसिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास पाठकों को ट्रांसजेंडर के संबंध में सोच-विचार करने के लिए मजबूर करता है।

प्रस्तुत उपन्यास में नंदरानी के माध्यम से पारिवारिक विस्थापन के कारणों पर भी नज़र डाला गया है। नाजबीबी का असली नाम नंदरानी है। किन्नर समुदाय के डर से उसकी दादी उसे नानी के घर भेज देती है। परिवारवाले उसको समाज के हेय दृष्टिकोण से बचाकर रखना चाहते थे। लेकिन उसकी शारीरिक कमियों और स्त्रैण स्वभाव के कारण समाज के लोग उसका मजाक उठाते थे। इन विपरीत परिस्थितियों के कारण नंदरानी अपना परिवार छोडकर किन्नर समुदाय में चली जाती है। उपन्यास में नंदरानी और छेल बिहारी जैसे पात्र हैं जो अपनी सामाजिक और पारिवारिक समस्याओं के कारण अपने घर से दूर भाग जाते हैं। एक ट्रांसजेंडर भी दूसरों की तरह अपने परिवार से संबंध रखना चाहता है। लेकिन सामाजिक डर से परिवार उसको दूर हटाता है। उपन्यास में ट्रांसजेंडर समुदाय के आर्थिक विषमताओं का भी चित्रण किया गया है। समाज में लोग ट्रांसजेंडर को किसी भी जगह काम देने के लिए तैयार नहीं होते हैं। इस कारण से कई लोग आजीविका के लिए वेश्यावृत्ति भी करते हैं। इसके फलस्वरूप कई लोग ऐड्स जैसी गंभीर बीमारियों के शिकार होकर मर जाते हैं। उपन्यास में जुबैदा और सोबराती ऐसे ही किन्नर है, यौन रोगों से उनकी मृत्यु हुई थी। इसलिए उपन्यास में महताब गुरु किन्नरों को उपदेश देते हुए कहते है - "दस-बीस रुपयों के लिए इतना गंदा काम करने की क्या जरूरत? अरे थोडा कम खाएंगें, कम सोना-चाँदी पहनेंगें, लेकिन वेश्यागिरी तो नहीं करनी पड़ेगी।"[1] इस तरह उपन्यास में नीरज माधव ने किन्नरों की दर्दनाक स्थिति का चित्रण प्रस्तुत किया है।

अकेलापन एक ऐसी भावना है जो बहुत तीव्रता से लोगों को एकांत और खालीपन का अनुभव होता है। अकेलापन महसूस करने के लिए अकेले होने की जरूरत नहीं है, उसे हजारों लोगों के बीच में अनुभव किया जा सकता है। महेन्द्र भीष्म का 'किन्नर कथा' उपन्यास में किन्नर गुरु तारा अकेलापन से तडपनेवाले एक पात्र है। चौदह-पन्द्रह वर्ष की उम्र में परिवारवालों को पता चला कि तारा एक ट्रांसजेंडर है। तारा के माता - पिता उसको किन्नरों के हाथों में सौंप देते हैं। उसके बाद परिवारवाले उसे पूर्ण रूप से भूल जाते है। इस तरह तारा अपनी ज़िन्दगी में अकेले बन जाती है। अकेलापन से तडपती तारा एक दिन मातिन से अपना दुख प्रकट करती हुई कहती है- "मातिन ! भगवान ने मेरे साथ ऐसा अन्याय क्यों किया? मैं हिजडा हूँ तो इसमें मेरा क्या कसूर? मुझ निर्दोष को किस बात की सजा मिल रही है? मेरा अपना कौन है? बचपन से आज तक बस अपने आप में दर्द पीते रहते हैं। दूसरों को हँसाते आए हैं, उनकी खुशियों में शरीक होते आए है, आशीष के सिवा कभी किसी को कुछ नहीं दिया, ईश्वर से बस एक शिकायत है। आखिर क्यों उसने हमें ऐसा बनाया?"[2] इस तरह उपन्यास में तारा के माध्यम से ट्रांसजेंडर की ज़िन्दगी के दर्दनाक पक्ष को उजागर किया गया है। उसे जन्म से लेकर मृत्यु तक अकेलेपन का ज़हर पीना पडता है।

'ज़िन्दगी एक जंजीर' राकेश शंकर भारती का ट्रांसमेन पर आधारित हिन्दी का पहला उपन्यास है। ट्रांसजेंडर केन्द्रित उपन्यासों में अधिकतर ट्रांसवुमन को ही चित्रित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री शरीर में पैदा हुआ जनकदेव बचपन से लेकर युवावस्था तक अपने अस्तित्व के बारे में सोचकर बहुत व्याकुल होता है। वह अपने अस्तित्व के बारे में ऐसा कहता है कि, "जब मैं छः साल का था तो मुझे ऐसे अनुभूति होने लगी कि मैं धोखे से गलत शरीर में पैदा हो गया हूँ और मुझे यह जिन्दगी नहीं जीनी है। शुरु से ही मुझे लड़कियों के कपडे पहनना पसंद नहीं था। लड़कियों की तरह बात नहीं करती थी।"[3] जनकदेव (जानकी) को कुछ समय के बाद एहसास होने लगा कि वह लड़कों से भी अलग है। कुछ साल के बाद उसको मासिक धर्म शुरु होता है। इस विषय पर वह ऐसा कहता है कि "जब मासिक धर्म होना शुरु हुआ और स्तन का सर्वांगीण विकास होने शुरु हुआ तो मैं उतना ज्यादा डिप्रेशन में जाने लगा कि मैं इन तकलीफों को शब्दों में बयान नहीं कर सकता हूँ। ऐसे कि हमारे शरीर की मासिक पुनरावृत्ति होती है क्योंकि मैं तो शारीरिक रूप से एक लड़की ही थी और मुझे लड़की जैसी पूरी अनुभूति होती थी। मैं मानसिक और हार्दिक रूप से एक लडका था। शरीर और मन का आपस में दूर-दूर तक कोई तालमेल ही नहीं था। मुझे ऐसे लगने लगा कि किसी ने मुझे जबरदस्ती इस शरीर में डाल दिया है। "[4] इस तरह उपन्यास में ट्रांसमेन के मानसिक संघर्ष को चित्रित किया गया है।

प्रस्तुत उपन्यास में उभयलैंगिक पात्रों का चित्रण भी माधव और बालदेव के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। बचपन से जवानी होने तक वे एक दूसरे से बहुत प्रेम करते थे। वे दोनों विवाह करके इस समाज में पति-पत्नी के रूप में रहना भी चाहते थे। लेकिन बालदेव उसको दिया हुआ वादा भूलकर पिताजी के कहने के अनुसार भागेश्वरी नामक एक युवती से विवाह करता है। विवाह के एक दिन पहले माधव बालदेव के पास आकर ऐसा कहता है कि "बालदेव तूने झूठा वादा क्यों किया था? जबकि तुझे पता था कि ऐसा नामुमकिन वादा कभी पूरा नहीं हो सकता है। मैं ढाई सालों तक यह सोचकर तडपता रहा कि गाँव लौटने पर तुम मेरे साथ रहोगे।"[5] बालदेव को समाज और परिवार से लडकर माधव के साथ विवाह करने का धैर्य नहीं था। इसलिए वह अपने प्रेम को छोडता है।

गीतांजली चटर्जी के 'तीसरे लोग' उपन्यास में पुरुष समलैंगिक (गे) पात्र स्मारक के मानसिक संघर्ष का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में स्मारक समाज और परिवार से मिलनेवाले परिहास और अवहेलना के डर से अपने अस्तित्व को छुपाते हैं। वह अपनी माँ से भी यह सच कह नहीं पाता है। इसके फलस्वरूप उसको मजबूर होकर माता-पिता की इच्छा के अनुसार फाल्गुनी नामक एक लडकी से विवाह करना पड़ता है। कुछ समय के बाद उसकी पत्नी फालगुनी उनसे दूर रहने के कारण पूछते समय वह ऐसा कहता है "फाल्गुनी मेरे कहे शब्दों को सुनो और उनकी भावनाओं को समझो, जानती हो ईश्वर ने मेरे साथ बड़ा ही भयावह और क्रूर मजाक ही तो किया है, तभी तो मैं स्वयं पुरुष के रूप में होने पर भी किसी अन्य पुरुष के काया से ही उत्तेजना पाता हूँ। क्योंकि मैं एक गे हूँ।"[6]

इस तरह प्रस्तुत उपन्सास में स्मारक अपने अस्तित्व को स्पष्ट करते हुए अपनी पत्नी के बारे में व्याकुल होकर स्वयं अपराधी मानकर जिन्दगी गुजारता है।

गिरिजा भारती के 'हमसफर' उपन्यास में समलैंगिक लोगों की समस्याओं का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में सोना और मौली स्त्री समलैंगिक हैं। वे दोनों विवाह करके पति-पत्नी के रूप में रहना चाहते थे। लेकिन परिवारवाले उनके रिश्ते के विरुद्ध खड़े होते समय वे दोनों अपना घर छोडकर दूर भागकर विवाह करके पति-पत्नी के रूप में रहते हैं। फिर भी उन दोनों को समाज से कई प्रकार की अवहेलना और परिहास का सामना करना पड़ता है। इस विषय के संबंध में मौली ऐसा कहता है कि, "मैं और सोना है तो एक ही जाति के लेकिन हैं तो दोनों लडकी, समाज के डर है कि इनका देखा-देखी दूसरे बच्चे ऐसा करने लगें तो हमारी सृष्टि ही नष्ट हो जायेगी। हम भी क्या करे? हम भी तो मजबूर है दिल के हाथों बहुत कोशिश की घरवालों की बात मान लों पर दिल नहीं माना। सच पूछो तो भाभी मैं सोना के और सोनो मेरे बिना नहीं रह सकते इसके लिए हम हर कठिन परीक्षा के लिए तैयार है।"[7] इस तरह उपन्यास में लेस्बियन की समस्याओं पर नजर डाला गया है।

उपन्यास में सागर पुरुष समलैंगिक है। लेकिन उसके माता-पिता इस विषय को मानने के लिए तैयार नहीं होते हैं। इसलिए सागर माँ-बाप के कहने के अनुसार नेहा नामक लड़की से विवाह करते हैं। सागर अपना वैवाहिक जीवन सफल बनाने के लिए कोशिश करते समय असफल हो जाता है। इसके फलस्वरूप सागर की पत्नी छोटी-छोटी बातों के लिए झगडा करके जीवन को संघर्षमय बनाता है। उपन्यास के अंत में सागर को बुरे लड़कों के द्वारा नंगा करके अपमानित करते समय वह स्वयं पराजित महसूस करके एक पत्र लिखकर आत्महत्या करता है। उस पत्र में उसने ऐसा लिखा है कि, "आज मुझे खुद से ही नफरत हो गई। जब मैं खुद के लिए लड नहीं सकता, तो नेहाजी के लिए क्या खाक लड़ सकूँगा। किस-किस से कहूँगा कि यह मेरी पत्नी नहीं सहेली है। मुझे तो कोई राजकुमार आयेगा ब्याहने और आज जो कुछ मेरे साथ हुआ उसमें मैं पूरी तरह टूट गया। सारे सपने टूट गये। इसलिए मैंने यह कदम उठाया। यह समाज मेरे लिए नहीं है। इसलिए मैंने इसे छोड दिया।"[8] इस तरह उपन्यास में समलैंगिक लोगों के आत्महत्या की समस्या का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

निष्कर्ष स्प में कहा जा सकता है कि आज क्वीर समुदाय के लोग शिक्षा प्राप्त कर एक सम्मानजनक जीवन जीने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। वे लोग अपनी अलग पहचान बनाने के लिए नई राह चुन रहे हैं। समाज के हर एक क्षेत्र में सहयोग देते हुए मुख्यधारा समाज में अपने लिए स्थान हासिल कर रहे हैं। क्वीर समुदाय के विकास के लिए अनेक संघटन कार्यरत है। इसके फलस्वरूप वे लोग शिक्षा, स्वास्थ्य, तकनीकी के क्षेत्रों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अपनी सहभागिता देते हुए अपनी पहचान बना रहे हैं। सामाजिक, आर्थिक और राजीतिक परिस्थितियों से सदा ही यह समाज ग्रसित रहा है। लेकिन अब समय है कि हम और हमारा साहित्य, समाज उनके प्रति दृष्टि को सकरात्मक बनाए। उन्हें घृणा की नहीं प्रेम की आवश्यकता है। केवल जैविक भिन्नता के कारण समाज से निष्कासित करना उचित नहीं है क्योंकि वे लोग भी हमारी तरह मानव है, उन्हें दूर हटाने की बजाय अपनाने की जरूरत है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. यमदीप नीरजा माधव, पृ. 28-29
2. किन्नर गाथा महेन्द्र भीष्म, पृ. 64
3. जिन्दगी एक जंजीर राकेश शंकर भारती, पृ. 111
4. वही, पृ. 113-114
5. वही, पृ. 138
6. तीसरे लोग गीतांजली चटर्जी, पृ. 37
7. हमसफर गिरिजा भारती, पृ. 34
8. वही, पृ. 96

शोध निर्देशिका : **प्रो (डॉ) पी गीता**
प्राचार्य, श्री व्यासा एन एस एस कॉलेज, वटक्कांचेरी
त्रिश्शूर

शोधछात्रा
सरकारी आट्र्स & साइन्स कॉलेज
कोषिक्कोड

याखानविवरण

मानस कैलास

अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर

मूल : मंजु वेल्लायणि

अनुवाद : डॉ.रंजीत रविशैलम

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

कितने भी बडा किला हो या ताला लगा हुआ लोहे का फाटक हो मृत्यु अनायास ही जा पहुँचती है। प्राप्त की हुई संपत्ति बंधु मित्रादि, कीर्ति, या वेदांत चिंतन व ज्ञान रत्ती भर भी उसे हिला नहीं पाएगा। कैलास यात्रा के बीच में एक आदमी की मृत्यु हो जाती है। तीन चार घोडे जल प्रवाह में पड़कर मर जाते हैं। तब तपोवनस्वामि मृत्यु को एक कसाई से उपमा करते है।

कैलास भूमि में मरनेवाले, वहाँ पडे मरने के अलावा किसे क्या सहायता पहूँचा सकते है। कसाई अपनी इच्छानुसार एक एक करके चुनकर मारता है। बकरी का समय व हामी को अनदेखा कर देता है। राजा या मंत्री, पुरोहित या पूजक कोई फर्क नहीं। सभी मृत्युशील ही है। मृत्यु के आगे सभी समान है। बकरी के सामान सभी परवश हैं। तपोवनस्वामी खिल्ली उडाते हुए कहते हैं कि इतना परवश, दुःखद्योतक जीवनस्थिति में भी 'अहं' का गर्व करते जन की मूढता ही सबसे कष्टस्थिति है। मालपा में प्रोतिम बेडी आदि आपदाओं में फँसने के पीछे ईश्वर के विरुध आचरण करने व उसपर नाचने हेतु है, ऐसा आरोप लगाने वालों को ध्यान से मन लगाकर तपोवनस्वामी की उपमा सुननी चाहिए।

देशपुक से दो घंटे की सफर करने पर समतल भूमि खतम होती है। भूप्रकृति में परिवर्तन प्रकट रूप से नज़र आता है। ठोस रूपायित पर्वतमाला नहीं है बलिक तितर बितर कर गए हो। ऐसा लगता है मानों - निष्कलंक बच्चे अपने खिलौने तोड फोडकर तितर बितर हो पडे पत्थर समान हो। इल्का-सा लाल व भूरे रंग के इस भाग में पीले रंग के चूहे व जंगली खरगोश - पत्थरों के बीच में विहार करते है। बीच बीच में नज़र आते हिरण को देखने पर आश्चर्य होने लगता है।

अनंत विशालकाय का विशेषण केवल आसमान के लिए नहीं कैलास पार्श्व के लिए भी उपयुक्त होने की बात पत्थरीले ठेलों के बीच में चलने पर लगती है। अतिदूर तक इस तरह के पत्थरीले ढेले ही हैं। हवा भी मौनजाप कर रही है। बुद्धस्तूप व विहारों के पास बीच बीच में लगाए हुए पंचरंगी प्रार्थना पताका सौदंर्य हर किसी को आकृष्ट करती है। दूर से देखने पर पुष्पित शाखाओं की जैसी लगती है। प्रफुल्लित वृक्षों को छोड दो एक-तृण भी पत्थरीली राहों में न दिखते, इसमें एकांत व जनांत से उत्पन्न भय का निवारण ये पताकाएँ करती हैं।

समुद्री तट पर रेतों से नील को किनारी लगती प्रकृति कैलास परिक्रम की राहों में पत्थर के ढेरों में अत्भुत बातें छिडक रखी है। उत्सव के अगले दिन पटाखे व बडे बमों के अवशिष्ट पडे हुए पूरम मैदान की प्रतीति नज़र आती है। स्वर्गीयमकुट जैसा दिखता कैलास को नज़र नहीं लगने हेतु है। रूप विधान से त्रस्त पत्थरों के टुकडों को इस तरह बिखेरा गया है।

श्मशान सी शांत उस लंबी राह से आगे चलने पर फेंकी गई स्थिति में कपडे व बर्तन का ढ़ेर मिला।

काले पत्थर एवं खाइयों से भरे यह भयजन्य प्रांत शिवताल श्मशान। तिबट वालों को यहाँ मृत्यु का स्थान। माना जाता है कि पसंदीदा कोई भी वस्तु वहाँ फेंकने पर उस व्यकित को पुनर्जन्म प्राप्त होता है। सायूज्य का पर्वत, मर्त्यु का क्षेत्र, आदि नामों से भी यह स्थान जाना जाता है। माना जाता है कि मृत्यु देव यम की राजधानी ही शिवताल श्मशान हैं। एक किलोमीटर तक लंबी दूरीतक तहस नहस हो पडा यह प्रांत मृत्युदेव की राजधानी है क्या ? ऐसा लगता है कि मानों वह परेशान के यमद्वारा का विस्तार है। चुगु बुद्ध विहार को पार कर यमदेव महल के समान हाच्चु नदी के तट पर दिखे पर्वत चूर चूर करने जैसा अनुभव। यहॉ पर अनेक लोग अपनी किसी प्रिय वस्तु का त्याग करना चाहते हैं। त्यागने का सुख प्राप्त करने कि लिए नहीं। वह शायद आने वाले पुर्नजन्म के बारे में सोचकर होगा। इस जन्म से ऊब गए और कोई भी जन्म नहीं चाहिए का नाम लगनेवाले कुछ न कुछ छोडे देता है। जन्मातरों को मोहित करने वाले कैलास के पास नहीं पहूँचने संबंधी मोह रखनेवाला कौन हो सकता है?

अंबरचुंबी पर्वतों एवं उसके समीप रूपायित खाई एवं पत्थरों का ढेर मृत्यु भय को द्योतित करते हैं। इसलिए ही उसका नाम शिवताल श्मशान का नाम पडा होगा। मृत्यु भय पार करने पर ही है न मृत्युंज शिव का कैलासपीठ और प्रकाशमान होता है। छोडने के लिए वस्त्र न मिलनेवाले एक बाल या एक बूँद रक्त अपर्ण कर पुनर्जन्म के लिए प्रार्थना करने का रिवाज़ भी है। यमद्वार में नज़र आए जैसे शिलालेख यहॉ भी नज़र आते हैं। मृत्यु देव के गोद में शयन करने से पहले के प्राण की तड़प जैसे बुद्ध धर्मवालों की प्रार्थना पताकाएँ एक साथ लहरा रही है।

मृत्यु के पश्चात भी स्वशरीर से, ओरों को द्वितीय जन्म पाने में सहायक, आँख, हृदय आदि देने में हिचकते लोगों की कमी नहीं है। मात्र आचार के लिए वस्त्र-पात्र आदि त्यागने से भी कितने ही विशिष्ट काम है। भोजनदान व स्वर्णमरुदंड प्रदान करने से भी कितने ही विशिष्ट है। ऐसा करने वालों को निश्चय ही उत्तम पुनर्जन्म प्राप्त होगा।

शिवतल श्मशान पार करने पर कठिन चढाई शुरु होती है। चढाई एवं पर्वतें का नमन करके की यात्रा होती है। दर्श के पाद को दैखकरी नमन करना चाहिए। कभी भी सिर को देखकर नमन नहीं करना चीहिए। ऐसा करने पर डर जाएँगे। पर्वतारोही द्वारा प्रदत्त पाठ है।

भोजन के बारे में कोई बोल नहीं रहा है। पूछ भी नहीं रहा है। पास जो रखे बिसकट, किसमिस, काजू ही काफी है। डोलमा ला दर्श की ऊचाई 19,500 फीट है। दर्श पार करने का सरलमार्ग स्वामी दुर्गानन्द सरस्वती ने बताया था। पेट्टा के एक वृद्धाश्रम स्वामी का निवास था। सालों से सायाह्न को श्री पद्मनाभस्वामी मंदिर के सामने के सीढियों पर खडे होकर आप प्रभाषण दिया करते हैं। उनके चारों तरफ सुननेवाले भी पहुत होते हैं। उनके वचन आत्मीयता के श्टंगों को छुकर जीवन के समतल की ओर अत्यंत शांत भाव से बहती हवा की तरह होते हैं। आश्रम नहीं, न भी भृत्य। लाभदृष्टि संपन्न शिष्य नहीं है। अनंतपुरी के किसी कोने के राह पर उनके दर्शन कभी भी प्राप्त हो सकते है। एक पैदलयात्री की तरह। कैलास परिक्रम करने वाले स्वामी देवीभक्त हैं। कैलास यात्रा हेतु अनुग्रह प्राप्त करने केलिए वृद्धसदन के कमरे में आने पर आप ध्यानमग्न थे। जय किया हुआ केला, भिण्डी, शहद एवं मन भरे मुस्कान के साथ प्रसाद प्रदान किया। कैलास परिक्रमा के बाद वापस आने पर मन में एक कैलास होना चाहिए। ऐसा होने से ही सफर से लाभ है- स्मामी जी ने याद दिलायी। दिवाकरन नायर, उण्णि एवं सुकुमारन नायर ने कैलास भू को स्पृष्ट उन पादों पर नमस्कार किया। डोलमा दर्श पार करते समय कोई भी पुराण कथा का स्मरण करना चाहिए। उनका उपदेश था कि उस कथा से होकर निकलने पर दर्श अनायास ही पार कर सकते है।

(क्रमशः)

आत्मकथा

देवयानम्

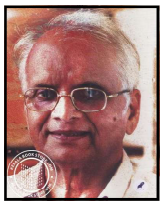

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

अठारहवाँ देवपद - अर्द्धविराम

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

भारत सरकार ने मुझे कलकत्ता के 'राजाराम मोहन रॉय लाइब्रेरी फौण्डेशन' की प्रशासन समिति के अंग के रूप में नियुक्त किया था। सांस्कृतिक तथा ग्रंथालय से संबंधित क्षेत्रों में जो काम अभी तक मैं ने किया है; शायद उसी को मान कर सरकार ने मुझे इस ओहदे पर नियुक्त किया होगा। इस संस्था की विभिन्न गोष्ठियों में भाग लेने के लिए मुझे कलकत्ता, दिल्ली, अहमदाबाद, बंगलुरू आदि कई जगह जाना पड़ा था। कलकत्ता में जाते समय अवश्य ही मैं बेलूर के श्रीरामकृष्ण आश्रम के मठ में रहता था। केवल यही बात नहीं है। श्रीरामकृष्ण देव और स्वामी विवेकानंद के पाद स्पर्श से पुनीत जितने स्थान वहाँ हैं उन सब का मैंने कई बार दर्शन किया है। उन में प्रमुख हैं श्रीरामकृष्ण मिशन कळचऱल इन्स्टिट्यूट (Sree Ramakrishna mission Cultural Institute) कलकत्ता के सुप्रसिद्ध नाशनल लाईब्रेरी (National Library), शांति निकेतन, रवींद्र भारती विश्वविद्यालय आदि। अहमदाबाद जाते समय मैं ज़रूर सबरमति आश्रम का दर्शन किया करता था जो हमारे राष्ट्रपिता महात्मागाँधी जी के आदर्श निष्ठ ज़िंदगी का परिचायक एवं कर्मक्षेत्र था। मशहूर नर्तकियाँ श्रीमती मृणालिनी साराभायी और उनकी बेटी श्रीमती मल्लिका साराभायी की 'दर्पणा' नामक संस्था में भी मैं गया था। अहमदाबाद के निकट के 'अक्षरधाम' एक अत्यंत सुंदर तथा अद्‌भुत आध्यात्मिक केंद्र है जिसका मैं ने दर्शन किया था।

राजाराम मोहन रॉय लाइब्रेरी फौण्डेशन ने अपने कुछ अंग्रेज़ी पुस्तक खरीद लिए थे; यह भी मेरे लिए संतोष की बात हुई थी।

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम में देश के विभिन्न प्रांतों के लोग अपने जीवन-यापन, नौकरी या अपनी शिक्षा-दीक्षा के लिए आकर रहते हैं। यह तो हमेशा होता रहता है और यह स्वाभाविक भी है कि ये लोग विभिन्न भाषा-भाषी एवं संस्कृति के हैं। कुछ कन्नड़ भाषी लोगों ने अपनी संस्कृति तथा कला को और भी प्रोज्ज्वलित करने के लिए 'कर्णाटका अस्सोसियेशन' (Karnataka Association) नामक किसी संघ की स्थापना की थी। तब बंगला भाषी लोगों ने भी 'बंगाली अस्सोसियेशन' (Bengali Association) नामक अपने संघ की स्थापना की थी। कर्णाटका अस्सोसियेशन के प्रमुख प्रवर्तक थे श्री सत्या, श्री जे डी ए और श्री सुब्रह्मण्यं। इन्होंने अपने अस्सोसियेशन के नाम पर तीन ग्रंथ प्रकाशित किए थे। मलयालम साहित्य की उत्कृष्ट कृतियों का कन्नड भाषा में अनुवाद कर अपनी भाषा को अधिकाधिक संपन्न एवं गौरवान्वित करना उनका लक्ष्य था। इन ग्रंथों का संपादन कर उनकी प्रवेशिका लिखने का दायित्व उन्होंने मुझे सौंपा था। विश्वविद्यालय के कन्नड़ भाषा-विभाग के अध्यापक थे डॉ रामा। हम दोनों ने मिलकर तीन मलयालम पुस्तकों का अनुवाद तैयार किया था और 'मंदारमल्लिके' के नाम से उन्हें प्रकाशित भी किया था। उसके बाद केरल की

कलाओं के बारे में एक पठनशील सचित्र ग्रंथ भी हमने प्रकाशित किया था जिसका शीर्षक था 'केरल कलामाला'। महान संगीतज्ञ एवं कवि श्री पुरंदरदास की रचनाओं का संग्रह 'पुरंदरदास के कीर्तन' नामक पुस्तक मलयालम भाषा में प्रकाशित किया गया था। इस संग्रह को तैयार करने में डॉ एस वेंकिट सुब्रह्मण्य अय्यर के साथ मेरा भी सहयोग था; फिर भी ग्रंथकार का नाम डॉ एस वेंकिट सुब्रह्मण्य अय्यर ही रखा गया था।

केवल कर्णाटका अस्सोसियेशन के सम्मेलनों में ही नहीं; बल्कि बंगला एवं तमिल भाषा-भाषियों की सभाओं में भी मैंने अनेक भाषण दिए थे।

उत्तर भारत की कोई संस्था, ऋषिकेश का कोई आश्रम और कुछ विदेशी पण्डित - इन तीनों के प्रयत्न के फलस्वरूप 'इनसैक्लोपीडिया ऑफ हिंदूयिसं' (Encyclo[edia of Hinduism) नामक बृहद ग्रंथ (बीस खण्डों का) प्रकाशित किया गया था। उसका संपादक था श्री शिवरामकृष्ण जो भारतीय विद्याभवन के 'भवन्स जेर्णल' (Bhavans Journal) का संपादक था। उसके सह संपादक के रूप में मैंने भी इस बृहद ग्रंथ को रूपायित करने में अपना सहयोग दिया था। श्री शिवरामकृष्ण ने भारतीय विद्याभवन के मासिक या भवन्स जेर्णल में मेरी कुछ रचनाएँ प्रकाशित की थीं। इस मासिक का दूसरा संपादक था श्री के सुब्बरायर जो हमारे गाँव का ही था। हम दोनों के गुरु थे श्री पी शेषाद्री अय्यर।

कई नियतकालिकों (Periodicals) में मैं हमेशा लिखा करता था। मलयालम के प्रसिद्ध समाचार पत्र एवं साप्ताहिक हैं 'मातृभूमि'। इसके प्रातः स्मरणीय संपादक हैं श्री के पी केशव मेनोन। उन्हीं के समय से मातृभूमि साप्ताहिक के साथ मेरा संबंध स्थापित हुआ था। बाद में वरिष्ठ कवि एवं बड़े पंडित श्री एन वी कृष्णवारियर 'मातृभूमि' के संपादक हुए थे और उनके बाद विख्यात उपन्यासकार श्री एम टी वासुदेवन नायर ने इस साप्ताहिक की रचनाओं को उत्तरोत्तर उत्तम बनाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने मुझसे कई पुस्तकों के समीक्षात्मक लेख लिखवाए थे। श्री एन वी कृष्ण वारियर के साथ तो मेरा बहुत पहले का परिचय था। 'समदर्शनं' नामक मेरी पुस्तक का प्राक्कथन उन्होंने लिखा था। यही नहीं, जब वे भाषा इनस्टिट्यूट के संचालक थे तब उन्होंने मेरे 'रूपक दर्शनं' नामक पुस्तक के प्रकाशन करने के लिए अपनी बहुत बड़ी सहायता दी थी। कई गोष्ठियों में हम दोनों ने एक ही रंगमंच पर खडे हो वक्तृता दी थी। कालिकट के 'समकालिका संगीतं' (आधुनिक संगीत) नामक कार्यक्रम में श्री एम टी वासुदेवन नायर ने मुझे 'संगीतविकास' पुरस्कार से सम्मानित किया था।मातृभूमि बुक्स ने मेरी कई पुस्तकें प्रकाशित की थीं और मातृभूमि समाचार पत्र एवं साप्ताहिक में अपने अनेक लेख भी प्रकाशित किए गए थे।

केरल के दूसरे प्रमुख समाचार पत्र 'मलयाल मनोरमा' और मासिक 'भाषापोषिणी' में भी मैं कभी कभी लेख लिखता था। इस के अलावा यहाँ जितने समाचार पत्र एवं मासिक हैं उन सबों में मेरे लेख प्रकाशित होते थे। वे इस प्रकार है :- केरल भूषण मासिक, केरल ध्वनि, दीपिका समाचार पत्र एवं साप्ताहिक, देशाभिमानी, मलयालनाडु, कुंकुमं, एक्सप्रेस समाचार पत्र, गुरुवायूर श्रीकृष्ण मंदिर की भक्तप्रिया (मासिक) कोच्चिन देवस्वम बोर्ड का 'क्षेत्रदर्शनं' अंपलप्पुऴा श्रीकृष्ण स्वामि मंदिर का 'श्रीवत्सं', डैजस्ट मासिक, भवन्स जेर्णल, षण्मुखा, भाषा इन्स्टिट्यूट की 'विज्ञानकैरली' मुंबई केरल समाज का 'विशाल केरलं', 'मलयाला साहित्यं', केरल विश्वविद्यालय के मलयालम विभाग की 'भाषा साहिती', श्रीरामकृष्ण आश्रम का 'प्रबुद्ध केरलं', 'विवेकोदयं', 'समीक्षा', 'केरला कविता' इत्यादि। एक सौ से अधिक ग्रंथों की भूमिका भी मैंने लिखी है। (क्रमशः)

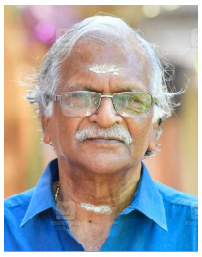

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी

अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

लेकिन यहाँ बात अलग है। किट्टन की पत्नी के कलरिक्कल घर में ही रहना अनिवार्य है। उसकी बहन पागल है। उसकी बेटी की तो पंत्रह वर्ष आयु बीत गई। किट्टन की पत्नी को ही अब उसे एवं उसकी पागल माँ की देखरेख करनी चाहिए। पुन्नूर तंपी लोग और उनके आश्रित लोग अपरिचित कोई भाषा सुनने के समान आपस में देखते रहे। पद्मनाभन तंपी अपनी माता एवं अन्य बंधुजनों के मुख देखने का धैर्य न होकर दुविधा में पड गया। विषहारी एवं आभिचारी रूपी कुमारन तंपी ने, प्राप्त अवसर को नष्ट होने न दिया। उन्होंने छोटे भाई के मुख की ओर देखकर व्यंग्य स्वर में पूछा- तुम्हें कहाँ से मिला इन बंधुओं को.....। बात करने या बर्ताव करना न जानने वाले लोग। मघा महीने में जन्मी लगती है भवानी। क्या ऐसी एक रिश्ता उसके लिए है....(श्रेष्ठ गुणों से संपन्न लड़की)दरवाजे की आड में सब कुछ देखकर एवं सुनकर खड़ी वधु बिलखती हुई कमरे की ओर दौडी। यक्षियों के रहने का कमरा है वह। पुन्नूर तंपी लोगों के कमरे की यक्षी दंड देनेवाली नहीं। साथ चलकर रक्षा करनेवाली है। सारे शुक्रवार को दीप जलाकर जो रखता है, उसकी प्रति के लिए हैं। सारे महत्वपूर्ण दिनों में यक्षी भगवती को परोसने के बाद ही घर के सदस्य भोजन करेंगे। परिवार का मुखिया कुमारन तंपी की आज्ञा पर वह आएगी, यही घरवालों एवं मूल निवासियों का विश्वास है। यही नहीं, यक्षी आभिचारी कुमारन तंपी की प्रेमिका है, और वे आपस में शीरीरिक संबंध रखते भी हैं, ऐसा भी बुजुर्ग स्त्रियाँ फुसफुसाती थीं।

जो भी हो शादी के दिन में हीं अनर्थ हुआ। हृदय टूटकर खडे प्रसिद्ध बेटे की अवस्था देखकर कुंञ्ञी कुट्टि तंकच्ची दुख पर नियंत्रण न कर सका। उन्होंने दरवाज़े की आड से बाहर निकल कर कहा: वर को एवं चाचा को इसप्रकार हठ नहीं करना चाहिए। यह एक बडा परिवार है। हमें अपनी एक अलग रिवाज़ है, अनुष्ठान हैं। भवानी मेरी सबसे छोटी बेटी है। चार वर्ष की आयु में उसके पिता गुज़र गए। दूसरे घर के रसोइया के रूप में उसे भेजने की बात सोच भी नहीं सकते।

दूसरा घर नहीं। कहो कि उसके पति का घर है। वर के चाचा ने कह दिया। ...

राघवन पिल्लै की बात का उललंखन न करें। कुमारन तंपी ने कहा-मैं पुन्नूर कुमारन तंपी हूँ। पूछताछ कर लो। पता चलेगा मैं कौन हूँ। मेरे एक प्रयोग करने पर तुम जहाँ खडे हो वहाँ से हिल भी न पाओगे। क्या करें, दुर्योग से बंधु जो ठहरे। साथ आए एक व्यक्ति ने वर के चाचा के कान में फुसफुसाया। राघवन पिल्लै कुछ शांत हो गया।

दोनों ओर हुई अरुचिकर बातचीत के बाद तय किया गया कि प्रथम रात्रि वधुगृह में ही हो जाय। राघवन पिल्लै ने भानजा किट्टन से कहा- हम जाते हैं। आज की रात तू यहीं रह। कल सुबह पत्नी को लेकर यहाँ से निकलना चाहिए। पोलात्तेक्कु किट्टन ने सहमति के रूप में, सिर हिलाया। पोलात्तेक्कु दुपहर के भोजन का समय, यही सार है। वर के घरवालों के असभ्य वेशभूषा और वर के चाचा के विशेष प्रकार की पगडी और विशेष भाषा शैली ने भी पुन्नूर परिवारवालों को आश्चर्य प्रदान किया। सबने पद्मनाभन तंपी की जल्दबाज़ीपूर्ण निर्णय को दोषी ठहराया। पर सबकुछ देखकर; परिभ्रम का अनुभव करने पर भी चटाई में पडकर धूप से प्रेम करनेवाले सौ रुपए के नोट ने उस सात्विक हृदयवाले को आश्वासन दिया। मावेलिक्करा और चेरुनाडू के बीच स्थित अत्यंत छोटा एक गाँव है तोनयक्काडु। तोने का स्थानीय भाषा में अर्थ है ज्यादा। तोने काडू (जंगल)

अर्थात ज्यादा जंगल। एक ज़माने में वह असल में जंगली प्रदेश था, यही सार है। मावेलिक्करा से चेंड़न्नूर की ओर जाने वाले रास्ते में प्रथम जो आता है वह तषंक्करा नामक प्रदेश है। वषुंवाडी सामाप्त होता है अच्चन कोविल नदी के किनारे पर। उस घाट का नाम है पोट्टेक्कंडपु) पोट्टेक्कंडपु से नौका से उस पार पहुँचने पर तोनयक्काडु हो गया। मात्र लाल मिट्टी के पथ और लाल रंग की मिट्टी से भरी पहाडी गाँव। एक दूकान तक नहीं है। मात्र सुबह खुलनेवाली एक चाय की दूकान मेरे बचपन के समय में थी। माँ का नववधू बनकर आते समय वह भी नहीं थी। बिना सामंजस्य से लौटनेवाले रिश्तेदारों के पास लडकी के घरवाले ने बहुत ही मिठाइयाँ लेकर आऐ। वर के चाचा को कीमती धोती व उत्तरीय। स्त्रियों को चंदवा ओर दो पवन (16 ग्राम) की स्वर्ण माला भी।

डाक्टर पदमनाभन तंपी और पत्नी शंकरियम्मा एवं कुंजुकुट्टि तंकच्ची, कारत्यायिनि तंकच्ची, प्रबंधक रामच्चार,- ये ही वधु के घर के समूह में थे।

वर भव्यता वश पत्नी के घरवालों को सत्कार किया। बडे चाचा ने अतिथियों से बहुत ही अनिच्छा से ही वर्ताव किया था। माँ को देखने पर नववधू फूट-फूटकर रोने लगी। घर की स्थिति, घरवालों का आचरण सब ने दादी को परेशान किया। माँ ने बेटे को देखा। चितवनबागों को, बनावटी मंद हँसी को रोकते हुए बेटा पद्मनाभन तंपी ने कहाः घर के बडपन में कुछ भी नहीं है माँ। जमीन की विस्तृति है। भवानी को कोई आपत्ति नहीं होगी।

इस समय भवानी को हमारे साथ ले जाकर उनको रूढ जाने न दें।

घर देखने कि लिए आए लोग लौट गए। नववधु नए घर में फिर से अकेली रह गई।

कलरिक्कल घर को पुन्नूर खानदान की, या पुन्नूर खानदान की महत्ता नहीं थी। पाँच हवेलियाँ और मूर्तिकला सौंदर्य से युक्त मेटयिल घर देखकर पली माँ की आँखों पर कलरिक्कल घर अपेक्षाकृत बहुत छोटा घर था। तीन बडे कमरे और उसके नीचे बडे तहखाने और उसके पीछे साधारण कमरों के होते हुए अगवाडा और बरामदे की चौडाई बहुत कम थी। सारे कार्यों में साफ-सफाई का पालन करने वाली माँ पति के रिश्तेदारों की आदतों को स्वीकार कर न सकी। पुन्नूर खानदान में सभी स्त्रियाँ उडकर प्रात : कालीन कर्मों का निर्वाह कर, स्नान करने के बाद ही रसोई धर में प्रवेश करतीं। पति के घर में जाने के ठीक अगले दिन माँ सबेरे तेल मलकर स्नान करने कि लिए तैयार होने पर चाचा राघव पिल्लै ने पूछाः भवानी, क्या करने जा रही हो? मैं स्नान करने जा रही हूँ।

तब पति के भाई की व्यंग्य भरी हँसी निकली। माँ ने उसे अनसुना करके पिता से पूछा :तालाब कहाँ है? पिता ने हँसते हुए कहाः यह हरिप्पाडु नहीं है। हरिप्पाडु तटीय भूमि है, यह बीच की भूमि है। यहाँ पानी प्राप्त करना है तो बहुत खोदना पडता है। यहाँ सब चेरा (स्थानीय) नदिया में ही स्नान करते हैं। एक फ़र्लांग चलना काफी है। हमारी खेती की जगह से लगकर है नदिया। मालेक्कल चेरा (नदिया) कहा जाता है। माँ निश्चल रह गई।

माँ उस माहौल से ताल मेल रख न सकी। पति की बहन ने एक शब्द भी नहीं निकाला। कुछ पूछने पर भय के साथ देखेगी। कभी कभी मुस्कराती थी। कभी कभी फूट - फूटकर कर रोती थी। पति उण्णित्तान को चाचाजियों द्वारा घर से निकाल दिए जाने के बाद ही वे अवस्था में पहुँच गईं। हमेशा बुरी वेशभूषा में ही रहेगी। उनकी बेटी मेरे पिताजी की भानजी राजम्मा कुंञम्मा,देखने के क्षण से ही शत्रु भाव से माँ को देखने लगी थी।

पिताजी को भानजी बच्ची है, मेरी बच्ची कहकर ही उसे बुलाते थे। चाचा की संपत्ति भानजी को ही मिलेगी। क्या, उसे यह स्त्री हडप लेगी, यह दस पंत्रह साल की आयुवाली की शंका थी। दो बडे चाचाओं ने संपत्ति हमारे परिवारों में न जाने के लिए शादी नहीं की थी। उन्हें चाचा कहना भी ठीक नहीं है। पिताजी के छोटे चाचा रामन महोदय हमेशा अगवाडा के धान्यागार में ऊँघते रहेंगे। वे घर के किसी भी मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। पाखाना-पेशाब आदि करने के लिए ही धान्यागार के ऊपर रहे आंगन में उतरेगा। भानजी राजम्मा भोजन अगवाडे में ले जाकर देती। छोटे चाचा ऐसे क्यों हो? माँ ने पिताजी से पूछा। छोटे चाचा की एक बुरी आदत है। भांग खाएगा। बडे चाचा ने डाँटा, मारा, कोई, प्रयोजन नहीं हुआ। फिर बडे भाई के पुत्र को भी खरीद कर देने लगे। माँ को आगे उस माहौल में रहने केलिए, कठिनाई महसूस हुई। माँ ने कहा - मुझे हरिप्पाट्टु ले जाकर छोड दो। (क्रमशः)

किसने कहा आप अब नहीं रहे....

(अपने गुरु स्वर्गीय **डॉ दीपक के आर** की स्मृतियों पर छात्रों का उद्‌गार)

प्रिय दीपु सर,

किसने कहा आप अब नहीं रहे,/ आप तो इस हवा के हर कण में है,/ हमारे यादों की राहो में है,/ हर सिखायी बातों की चाहों में है।/जिस दिन तक हम रहेंगे, आप साथ रहेंगे।/आप अभी गए ही नहीं, बह एहसास बन गए हैं।

शिक्षण की इस खूबसूरत राह चुनने के लिए आपको धन्यवाद। आज यह लिखते हुए भी हम इस सच को मानने के लिए तैयार नहीं है कि आप अब नहीं रहे। हम इस कड़वे सच को कभी मानना भी नहीं चाहते हैं। क्योंकि आज भी आप की आवाज़, आँखें, मुस्कान, सकारात्मक आभा ..., सब कुछ हमारी नज़रों में बसे हैं। आपका हर एक मार्गदर्शन आज भी कानों में गूँजता है। वह पत्र आप के लिए हमारी कुछ अनकही बातों का बयान है, जिसे हम यहाँ साझा करना चाहते हैं।

हर एक Batch की अपनी एक कहानी होती है। हमारी कहानी में आप केवल शिक्षक ही नहीं, बल्कि हमारे सफर का एक अहम हिस्सा है। अध्यापक - विध्यार्थी से हमें एक परिवार बनने में उतना समय नहीं लगा। आपके साथ बिताए हुए हर पल हमारे लिए अनमोल है। आपने पाठ्य पुस्तक के बाहर ज़िंदगी में, एक सीख दी थी। आपके द्वारा पढाए हर एक विषय हमेशा याद रहेंगे। 'कुटज' से लेकर 'माधवी' तक ये सब कैसे भूल सकते हैं हम। आपने हमारे कहने पर जो दो बार गाना गाये थे, वह हम कैसे भूल पायेंगे? कभी नहीं।

सर, उस छत्तीसगढ यात्रा को हम मरते दम तक भूल नहीं पायेंगे। क्योंकि उस यात्रा ने हिन्दी विभाग के बाहर वाले सर को हमें दिखाया। आपके नाम वाले बोर्ड जगह-जगह दिखने पर बच्चों की तरह उछलना, एक बार तो I Love Deepak बोर्ड के सामने खडे होकर तस्वीर खींचकर ग्रूप में डाला और आपकी प्रतिक्रिया का इंतज़ार करने लगे। उस यात्रा में हर पल, हर कदम पर आपने हमारा ऐसा ख्याल रखा मानों हम आपका अपना परिवार है। रायपुर की आखिरी रात में हम सबने इंदु टीचर और आपके साथ जो मज़े किए - कभी नहीं भूल पाएँगे। बीच में आपका मज़ाकी-अंदाज में कुछ कहना, हँसी और खुशी को दुगुना कर देते। हमने आपके और अन्य अध्यापकों के साथ अध्यापक - विध्यार्थी भेदभाव के बिना जो होली मनायी - वह पल अविस्मरणीय है। वापसी ट्रेन यात्रा में हमें तो भूख का पता न चला। हर स्टेशन पर उतरकर हमारे लिए कुछ न कुछ लेकर आना और मुस्कराते सबको बाँटना। कहानियाँ, हँसी के ठहाकों से, खेल खेलते हम सबका मन भर गया।

हँसी, खुशी, गम, मज़े और अनमोल यादों से भरे हमारे इस दो साल की यात्रा में भाग लेने के लिए धन्यवाद सर। आपकी ये सारी स्मृतियाँ आज हमारे पास सबसे अनमोल धरोहर बनकर रह गई हैं। हम आपका कितना सम्मान करते हैं, कितना प्यार करते, कितना याद करते हैं- यह शायद अलफ़ाज़ों में बयान नहीं कर पाएँगे। आपके साथ बिताए गए हर पल को हम हमेशा आपने दिल में संजोकर रखेंगे।

बस दुख इस बात का है कि आनेवाली पीढ़ी आप जैसे श्रेष्ठ गुरु, महान व्यक्ति को जान नहीं पाएँगे। पर आपके नाम की तरह आप एक 'ज्ञान का दीपक' बनकर हमेशा रहेंगे। यह दीपक कभी नहीं बुझेंगे।

आपका प्रिय,
MA Batch 2022-24
हिंदी विभाग, केरल विश्वविद्‌यालय

केरल हिंदी प्रचार सभा परिवार की भावभीनि श्रद्‌धाँजली!

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. साधारणीकरण किसकी अवधारणा है?
2. 'लाल पान की बेगम' किसकी कहानी है?
3. 'रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेंदु बिंबानना' किसकी पंक्ति है?
4. 'नायक, खलनायक, विदूषक' - के रचयिता कौन है?
5. 'कुटज' किसका प्रसिद्ध निबंध है?
6. मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र समझता हूँ - किसका कथन है?
7. 'अब लौं नसानी, अब न नसैहौ' - किसकी उक्ति है?
8. 'आत्मजयी' किसकी रचना है?
9. निराला कृत 'राम की शक्तिपूजा' की रचना का आधारग्रंथ कौन-सा है?
10. 'मैं बोरिशायिल्ला' किसकी रचना है?
11. साहित्यिक अपभ्रंश को 'पुरानी हिंदी' किसने कहा था?
12. 'एस्से इन क्रिटिसिज़्म' किसकी रचना है?
13. शब्द की द्वयर्थी योजना से कौन-सा अलंकार होता है?
14. 'उत्पत्तिवाद' के प्रवर्तक कौन थे?
15. 'विकल्पहीन नहीं है दुनिया' किसकी रचना है?
16. 'संशयात्मा' किसकी काव्य रचना है?
17. मध्वाचार्य किस संप्रदाय के संस्थापक है?
18. 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए' किसकी पंक्ति है?
19. 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' के रचनाकार कौन हैं?
20. 'आल्हा' किस ऋतु में गाया जाता है?

उत्तर

1. भट्टनायक
2. फणीश्वरनाथ रेणु
3. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध
4. सुरेंद्र वर्मा
5. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
6. प्रेमचंद
7. तुलसीदास
8. कुँवरनारायण
9. कृत्तिवास रामायण
10. महुआ माझी
11. राहुल सांकृत्यायन
12. मैथ्यू आर्नल्ड
13. श्लेष
14. शंकुक
15. किशन पटनायक
16. ज्ञानेंद्रपति
17. द्वैत
18. बालकृष्णशर्मा नवीन
19. जयशंकर प्रसाद
20. वर्षा ऋतु

आचार्य (बी.एड्) 2025-2027 वर्ष के विद्यार्थियों की अध्ययन यात्रा के विविध दृश्य

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-02-2026
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

FEBRUARY 2026

Vol. No. 62, Issue No.11
Regn. No. KL/TV(S) 381/2025-2027
Price Rs. 40/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

(26 जनवरी 2026) गणतंत्र दिवस-ध्वजारोहण कर रहे हैं
सभा के मंत्री अधिवक्ता डॉ.मधु बी.

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 में मुद्रित डॉ.एम.एस.विनयचन्द्रन व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Dr.M.S.Vinayachandran and Dr.Renjith Ravisailam